

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178254

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-68-11-1-68-2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H928.9/43
J83U Accession No. H37

Author जोशी, शशीपाद.

Title अद्वैत अदीन . 1946 .

This book should be returned on or before the date last marked below.

अुर्दूके अदीब

(अुर्दू साहित्यिकोंका संक्षिप्त परिचय)

आलोचना व निबन्ध

लेखक

श्रीपाद जोशी

दीबाचा

आचार्य श्री काकासाहब कालेलकर



बोरा अेन्ड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड

३. शांभुंड वील्डींग, कालबादेवी रोड, बंबयी २.

पहला संस्करण, अक्टोबर, १९४६

किंमत रु. १—८—०

सप्रेम समर्पित

**अपने अुन विद्यार्थी-मित्रोंको जिनके लिये
यह किताब लिखी गयी थी।**

लेखक

मज़मूनोंकी फ़ेहरिस्त

नाम	पृष्ठ.
परिचयका परिचय	५
शुक्रिया	७
नज़्म विभाग	
१ अर्दू ज़बानका प्रारम्भ	१०
२ दक्षिणके पुराने शायर	१५
३ दिल्लीकी महफ़िलें-हातिम आर.जू	२१
४ भीर और सौदा	२६
५ अग्निशा, जुरअत और ममहफ़ी	३८
६ श्रेक हिन्दोस्तानी शायर	४६
७ दिल्लीसे लखनऊ-नासिख और आतिशका ज़माना	४९
८ मर्सिया और मर्सियागो	५८
९ फिरसे दिल्ली	६४
१० रामपुर और हैदराबाद	७१
११ नयी रोशनीका ज़माना,	७९
१२ कलके शायर	८८
नसर विभाग	
१३ अर्दूका नस्स	१००
१४ फोर्ट विल्यम कालेज	१०४
१५ दिल्ली और लखनऊके नस्सार	१०७
१६ सर सैयद और अलीगढ़ कालेज	१११
१७ मौलाना आज़ाद और दिल्ली कालेज	१२०
१८ दूसरे लोगोंकी खिदमतें	१२५
१९ कहानी और अपन्यास	१२९
२० नाटक और परिदास	१३४
२१ अख़बारी दुनिया	१४०
परिशिष्ट १ (आजके शायर)	१४३
परिशिष्ट २ (आजके गद्यलेखक)	१५६
सूची (इंडेक्स)	१६५

परिचयका परिचय

शुर्दू साहित्यका अतिहास शुर्दूमें तो पढ़नेको मिलता ही है । अंग्रेजीमें भी मिलता है । लेकिन मैं नहीं मानता कि बँगला, तमिल या मराठीमें शुर्दू साहित्यका अतिहास मिलता हो । जब कुछ जानकारीकी जरूरत होती है तब हम अंग्रेजीके पास दौड़ते हैं । हिन्दुस्तानको पहचाननेके लिये हमें अंग्रेजीके पुरुषार्थका सहारा लेना पड़े, यह सचमुच शर्मकी बात है ।

हिन्दी और शुर्दू यह दो भाषाएँ या शैलियाँ अलग दूसरीसे अलग नजदीक हैं कि दोनोंके साहित्योंकी जानकारी अलग साथ रहना स्वाभाविक-सी बात होनी चाहिये थी । लेकिन अलग दोनोंके बीच कुछ प्रतिद्वन्द्विता-सी हो गयी है । मुझे मालूम नहीं कि शुर्दूमें हिन्दी साहित्यका अतिहास पाया जाता है या नहीं । हिन्दीमें भी शुर्दू साहित्यकी अलग दो रूपरेखाओंको छोड़कर कोअरी विशेष ग्रंथ हो तो उसके बारेमें मैंने नहीं सुना है । जो शुर्दू हिन्दुस्तानमें ही पैदा हुआ है, जिसने कुछ समय तक राजभाषाका काम किया, जिसका असर हिन्दुस्तानकी अनेक भाषाओं पर कमोबेश पाया जाता है और जिसके बनानेमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंका हाथ है, उस भाषाके साहित्यका अतिहास हम न जानें, यह हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रीयताके लिये शोभादायक नहीं है ।

जब चि. श्रीपाद जोशी हिन्दी और शुर्दूका अलग साथ अध्ययन करनेके लिये मेरी प्रेरणासे दिल्ली जाकर रहे, तब मैंने उनसे शुर्दू साहित्यकी छोटी-सी रूपरेखा मांगी थी । मैंने उनसे कहा था, 'जिनकी जन्मभाषा न हिन्दी है न शुर्दू और जिन्हें उत्तर भारतमें जानेका मौका भी कम मिलता है अैसे लोगों के लिये शुर्दू साहित्यका अलग छोटा-सा अतिहास मुझे दे दीजिये । अतिहास लिखा तो जाय हिन्दीमें, लेकिन शुर्दू-साहित्य-चर्चामें जो पारिभाषिक शब्द आते हैं, कमसे कम उनका परिचय तो अिस अतिहासको पढ़ते-पढ़ते आपही

आप हो जाना चाहिये। जिस अद्देश्यको सफल बनाते आपकी हिन्दी हिन्दुस्तानी बन जायगी; जिसमें अच्छा ही समझूंगा। अर्द्ध साहित्यके इतिहासमें अर्द्धपनकी कुछ झलक तो आनी ही चाहिये।

नौसिखुवोंके लिये साहित्यके इतिहासमें हदसे ज्यादा जानकारी रहे यह लाभदायी नहीं है। मुझे डर था कि चि. श्रीपाद अर्द्धके बड़े बड़े इतिहास मूल अर्द्धमें पढ़कर वहांकी सब जानकारी थोड़े शब्दोंमें ठूस देंगे और अन्तमें उसे लेखकों और ग्रंथोंकी सहस्रनामावली या फेहरिस्त ही बना देंगे। यह रूपरेखा सुननेके बाद मैं देख सका कि अन्होंने वैसी गलती नहीं की। साहित्यिक अभिरुचिके साथ उसे अन्होंने लिखा है; और अिनका अद्देश्य वाचकोंकी जानकारीका खजाना भर देनेका नहीं किन्तु अर्द्ध साहित्यके स्वरूप और उसकी प्रधान धाराओंका परिचय ही कराना है। जिसने अर्द्ध साहित्य पढ़ा ही नहीं है, उसके मनमें उस साहित्यके प्रति आकर्षण पैदा करनेका काम यह रूपरेखा अवश्य करेगी और जिस तरह अच्छे नक्शे इतना ही दिखाते हैं कि बेराके प्रधान प्रधान स्थान कहाँ हैं और बीच-बीच में खुली जगह रहनेसे आसुवदार और वक्त्वपूर्ण (eloquent) बनते हैं उसी तरह यह रूपरेखा भी अर्द्ध साहित्यको थोड़े शब्दोंमें अद्दीपित करती है।

यहांके अध्यापन मंदिरमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थियोंको अर्द्ध साहित्य का इतिहास पढ़ानेका मौका मिलनेके कारण चि. श्रीपादका ध्यान स्वाभाविकतया विद्यार्थियोंकी कठिनाइयोंकी ओर गया है।

अर्द्ध भाषा और साहित्यके जिनका परिचय नया ही है उसे अरु नव-युवकने यह रूपरेखा लिखी है, और दोनोंके बारेमें जिसे तनेम भी जानकारी नहीं है, उसीमें उसकी प्रस्तावना लिख रहा हूँ। राष्ट्रीय अंकताके अत्साह की यह निशानी है, अगर पाठकोंमें यही अत्साह पैदा हो गया तो उस किताबका कार्य सफल हुआ समझा जायेगा।

काका कलिलकर.

वर्धा.

३१-३-४२.

शुक्रिया

वर्धा.

ता. ४-९-४९

श्रद्धेय श्री सुदर्शनजी,

सादर प्रणाम.

पूज्य श्री काकासाहबके आदेशके अनुसार गत महीनेकी २५ वीं तारीख को मैंने यहाँसे 'अर्दूके अदीब' की पांडुलिपि आपकी सेवामें भेज दी थी। आशा है वह आपको मिल गयी होगी।

अस किताबका मकसद यह है कि जो राष्ट्र-भाषा-प्रेमी फिर चाहे वे विद्यार्थी हों चाहे और कोअी, अर्दू साहित्यके अतिहासका अल्प-सा परिचय प्राप्त करना चाहते हों अन्हें अससे कुछ मदद मिले। जहां तक मेरी जानकारी है हिन्दीमें अब तक अस ढंगकी कोअी छोटी-सी किताब नहीं है।

मैंने पहले सोचा था कि अर्दू साहित्यका अतिहास लिखना है तो असकी भाषा भी अर्दू ही रहे, ताकि पाठक अर्दूके पारिभाषिक शब्दोंसे भी परिचित हों, लेकिन असकी जवान बहुत ही मुश्किल हो गयी। असलिये मैंने असी का अनुवाद हिन्दुस्तानीमें करनेका सोचा। आपके पास जो पांडुलिपि भेजी है उसके साथ यह हिन्दुस्तानी तर्जुमा भी है। उसे भी देख जानेकी कृपा करें।

इस किताबके मौलिक होनेका दावा मैं बिलकुल नहीं करता; क्योंकि वह तो, नीचे लिखी पुस्तकोंकी मददसे तैयार की हुअी टिप्पणियां ही हैं। हां अूनमें प्रामाणिकताका ध्यान रखनेकी मैंने भरसक कोशिश तो जरूर की है। आधारभूत ग्रंथ ये हैं:—

१. तारीखे अदबे अर्दू ("हिस्ट्री ऑफ अर्दू लिटरेचर"का अर्दू तर्जुमा)
—लेखक : डाक्टर रामबाबू सक्सेना।

२. आबे हयात—ले: मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद.

३. अर्दू लिटरेचर—,, टी. ग्रैहैम बेली.
४. अर्दू साहित्यका इतिहास—ले: बाबू ब्रजरत्नदास.
५. कविता कौमुदी (भाग चौथा)—ले: श्री रामनरेश त्रिपाठी.
६. मुख्तसर तारीखे अदबे अर्दू—,, सैयद अैजाज हुसैन “अैजाज.”
७. मुसन्निफैने अर्दू—प्रकाशक: मकतबा जामिया, दिल्ली.

अिस दिशामें मेरा यह पहला ही प्रयत्न है, चुनांचे आप जैसे विद्वान साहित्य-स्वामीसे अुपयुक्त सूचनाओं पानेकी मैं अिच्छा रखता हूँ।

कृपया किताबको अेक बार देख जाअिये और अुसमें जो भी खामियां आपको दिखाअी दें वे मुझे निःसंकोच बताअिये।

योग्य सेवा लिखते रहें।

विनम्र—

श्रीपाद जोशी.

भाअरीजान नमस्ते कबूल कीजिए ।

खत आपका मिला । यह जानकर खुशी हुआ कि आपने मेरे सुभावाँ को पसन्द किया है ।

आप पूछते हैं, आपकी किताबके मुताल्लिक मेरी राय क्या है ? मेरा खयाल था कि मैंने अपनी राय भेज दी है; अगर नहीं भेजी तो अब भेजता हूँ ।

आपकी किताब मजमून और जवान यानी भाव और भाषा दोनोंके लिहाजसे काबिले कद्र है । आपने अिसकी तैयारीमें जो मेहनत की है और अिस सिलसिलेमें खोज-खबरकी जो किताबें पढ़ी हैं अुसके लिये मुंहसे बेअ-ख्तियार तारीफ़-प्रशंसा निकली जाती है । ग़ज़ब तो यह है कि आपकी 'दूर देख' आंखसे आज पैदा होकर कल मर जानेवाले अखबार भी नहीं बचे ।

आप अिस किताबको जरूर छापिये । अिसके लिये हिन्दी और अुर्दू दोनों जवानोंमें जगह है । अिसे दोनों जवानोंके भदीब और लेखक सर आंखों पर जगह देंगे; और अिसके छप जानेसे अेक बहुत बड़ी कमी दूर हो जायगी । अिसे न छापना हिन्दी साहित्य और अुर्दू अदब दोनोंपर जुल्म होगा जिसके लिये आनेवाली नस्लें आपको कमी मुआफ़ न करेंगी ।

आखिरमें मैं आपको मुबारकवाद देता हूँ कि आपने वह काम किया जो आजसे बहुत दिन पहिले हो जाना चाहिये था; और जिसे अुन्होंने न किया जिनकी जवान अुर्दू और हिन्दी थी और जिसे करना अुनका धर्म था ।

अुन्होंने अपना धर्म पूरा न किया । आपने दूसरोंका धर्म पूरा किया । अिसके लिये देश आपकी तारीफ़ करेगा ।

आपका
सुदर्शन

अर्दू ज़बानका प्रारंभ

अर्दू क्या चीज़ है ?

आम तौर पर यह समझा जाता है कि अर्दू मुसलमानोंकी ज़बान है और हिन्दी हिन्दुओंकी। लेकिन यह तो बिल्कुल साफ़ है कि कोअरी मी ज़बान किसी खास मज़हब या फ़िरक़ेकी गुलाम नहीं हुआ करती। भाषाका किसी जाति या धर्मसे बिशेष सम्बन्ध होना कोअरी लाजिमी बात नहीं है। तो फिर यह ग़लतफ़हमी क्योंकर फैली कि अर्दू मुसलमानोंकी ज़बान है ?

अ़िसका कारण यह हो सकता है अर्दू ज़बानकी वलादत (जन्म) मुसलमानोंके शाही महलोंमें हुआ और वहीं अ़ुसने परवरिश पायी। चूँकि अ़िसने फ़ारसीके रस्मुलख़त (लिपि) को अख़्तियार किया और संस्कृत या प्राकृतकी अपेक्षा अ़ुसने अरबी और फ़ारसी शब्दोंको ज़्यादा प्यार और मुहब्बतके साथ अपनाया, अ़िसलिये भी अ़िस ख़्यालकी तस्वीक़ (पुष्टि) होती गयी। अर्दूकी ख़िदमत करनेवालोंकी तादाद ज़्यादातर मुसलमानोंकी है और अ़ुन्होंने अपने लेखनमें हिन्दुस्तानको छोड़कर फ़ारसको अपनी कलाका ध्येय बनाकर वहांकी बहरों (छंदों) और तशबीहों (अ़ुपमाओं) की तस्वीरें खींची हैं, अ़िसलिये भी यहांके कुछ लोगोंको वह कुछ परायी-सी लगती हो। फिर भी अ़िस ग़लतफ़हमीकी जड़ें अबतक बहुत ज़्यादा गहरी नहीं गयी हैं क्योंकि कितने ही हिन्दू शायर और मुसनिफ़ (लेखक) अर्दूकी दिलोजानसे ख़िदमत करते आये हैं और आज भी बहुतसे अ़ैसे हिन्दू लोग मिलेंगे जो अर्दूको अपनी मादरी ज़बान (मातृभाषा) तसलीम करनेमें फ़रव समझते हैं।

अर्दूकी पैदाअ़िश—

कुछ लोग समझते हैं कि अर्दू ज़बानकी पैदाअ़िश फ़ारसीसे हुआ है और कुछ लोगोंका खयाल है कि वह व्रज भाषासे पैदा हुआ है। अ़िनमेंसे

पहली राय तो बिल्कुल गलत है, क्योंकि किसी श्रेक भाषामें किसी दूसरी भाषाके शब्दोंकी अधिकता होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह उस दूसरी भाषासे ही पैदा हुआ है। अर्द्धकी बुनियाद तो हिन्दी ही रही है और रहेगी। अब जब हमने हिन्दीको अर्द्धकी मां समझ लिया तो यह सवाल ही नहीं रहता कि वह व्रजभाषासे पैदा हुआ है या खड़ी बोलीसे, बिहारीसे निकली है या छत्तीसगढ़ी से। क्योंकि यह सब बोलियां हिन्दी परिवारकी ही हैं। अिसलिये अब अर्द्धकी पैदाअिशको समझना आसान होगा। अर्द्ध जबान वास्तवमें उस हिन्दी या भाषाकी शाख है जो सदियोंसे दिल्ली और मेरठके आस-पास बोली जाती है। अिस वास्ते अिसे मगरिबी (पश्चिमी) हिन्दीकी वह अदबी (साहित्यिक) सूरत समझनी चाहिये जिसका मुकाव फ़ारसी और अरबी जबानोंकी तरफ़ ज़्यादा है। यानी अिसका ढांचा तो असली खड़ी बोलीका है मगर उसपर अरबी-फ़ारसीकी निहायत दिलकश नक्काशी की गयी है जिससे अपरी तौर पर देखनेसे वह बिदेसी-सी मालूम होती है।

जब मुस्लिम मजहब और तहज़ीब (सभ्यता) को फैलानेकी गरज़से बहादुर मुलमानोंने शुमाली (अुत्तरी) हिन्द पर हमले करने शुरू किये उसी वक़्तसे अर्द्धकी अिब्तदा समझनी चाहिये। मगर जब तक यहाँ मुग़लोंकी सल्तनत कायम न हुआ तब तक अिस जबानने कोअी खास अदबी सूरत अख्तियार नहीं की। यह तो बिल्कुल फ़ितरती (स्वाभाविक) बात थी कि फ़ातह (विजयी) मुसलमानोंके दरबारमें फ़ारसीका और उसकी शायरीका दौरदौरा (धूम-धाम) रहे, लेकिन किसी भी शायरीका दायरा अितना महदूद (परिमित) नहीं रह सकता कि वह सिर्फ़ बादशाहों और अमीरोंको ही खुश करे। यही वजह थी कि थोड़े ही दिनोंमें फ़ारसीकी जगह अर्द्धने ले ली; हालाँ-कि दरबारी कारोबारके वास्ते आखिर तक फ़ारसी ही चलती रही।

अर्द्ध लफ़्ज़ कोअी बहुत पुराना नहीं है। शाहजहाँ बादशाहके ज़मानेसे पहले अिसी भाषाको हिन्दी, हिन्दुअी, रेखता, दकिनी, आदि नामोंसे पुकारा जाता था। अमीर खुसरोको आजका अर्द्ध संसार 'अर्द्ध जबानका पहला शायर करार देता है। उसकी 'ख़ालिकबारी' नामकी लुग़तनुमा (कोष-सदृश) किताबमें सब जगह अर्द्धके अर्थमें हिन्दी या हिन्दुअी शब्दका ही प्रयोग

किया गया है। और शायद अिसी लिये हिन्दी साहित्यके इतिहासमें खुसरो को अितना अँचा स्थान प्राप्त हुआ है। अमर प्रेम-काव्य 'पद्मावत' के लेखक मलिक मुहम्मद जायसीने भी 'हिन्दुअरी' शब्द ही बरता है। मलकु-शुअरा (कविवर) सौदाके अुस्ताद शाह हातिमने भी (स० १७५० अी.) अिसी शब्दको अिस्तेमाल किया है। 'आतिश' 'बाकर' 'आगाह' 'जुरअत' वगैरह शायरोंने भी अिस लफ्जको अपनाया है। अितना ही नहीं बल्कि अुर्दू के अिस नये जमानेके अुस्ताद सैयद अिन्शा अल्लाखॉने अपनी मराहूर किताब 'दरियाअे लताफत' में कअरी जगह 'हिन्दी' लफ्जका अिस्तेमाल 'अुर्दू' के मानीमें किया है।

मगर अिससे हमें यह नहीं समझना चाहिये कि तब तक 'अुर्दू' लफ्जका रिवाज कहीं था ही नहीं। अैसी बात नहीं है। तुर्की ज़बानमें लश्करके बाज़ारको अुर्दू कहते हैं। अिसलामी सल्तनतके जमानेमें मुग़ल, पठान, तुर्क अफ़ग़ान वगैरह विदेसी सिपाही शाही फौजोंमें नौकरी करते थे। अिस वक्त लश्कर के बाज़ारोंमें लेन-देन, खरीद-फ़रोख्तकी गरजसे अुन्हें ख़ालिस अरबी, फ़ारसी या तुर्कीको छोड़कर अेक अैसी ज़बानसे काम लेना पड़ता था जिसे यहाँके दूकानदार आसानीसे समझ सकें। हम ज़रासी कोशिश करें तो कल्पना कर सकते हैं कि अुस वक्त अिस ज़बानकी शकल-सूरत कैसी होगी। अुसकी क्रियाओं, कारक, सर्वनाम, लिंग, वचन, विभक्ति, अव्यय वगैरह सब न फ़ारसीके होंगे न हिन्दी के। अुसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की वगैरह ज़बानोंके लफ्जोंकी भरमार होना कितना कुदरती था। अिसी ज़बानको बादमें अुर्दू कहा गया। चूँकि अिस ज़बानमें अलग अलग भाषाओंके लफ्ज बिखरे हुए पड़े थे अिसलिये अुसे 'रेख्ता' भी कहते थे। (अिसकी अेक दूसरी सूरत 'रेख्ती' कहलायी जो ख़ासकर औरतोंकी बोलचालकी ज़बान है।) लेकिन रेख्तासे अक्सर मतलब अुर्दू 'शायरी' से हुआ करता है न कि नख़ (गद्य) से।

अुर्दू की अदबी सूरत:—

शाही दरबारोंमें जो शायर थे वह पहले पहल सिर्फ़ फ़ारसीमें अपने कलमके जौहर दिखलाया करते थे। अिसकी वजह साफ़ साफ़ यह थी कि बादशाह और अमीर व वज़ीर यहाँकी किसी देशी भाषासे बहुत कम वाकिफ़

रहते थे। जिसके अलावा जिन शायरोंको वहाँ प्रवेश मिलता था वह अक्सर श्रीरान और फारससे आये हुअे होते थे। जिसलिये अर्दू साहित्यकी बुनियाद अैसे लोगोंके हाथों पड़ी जो 'भाषा' की बनिस्बत फारसीपर ज्यादा फरेफता (मुग्ध) थे। जिसीलिये अर्दू में अशकके फूल खिलने लगे जिनकी खुशबूने आशिकों और माशकूनोंको अपनी तरफ खींच लिया। फारसीकी मददकी वजहसे अर्दूकी शायरीको तरक्कीके वह दर्जे नहीं तय करने पड़े जिनकी रफ्तार तो जरूर सुस्त होती है मगर अेक नयी जबानके वास्ते जो निहायत जरूरी होते हैं। जैसे कोअी आदमी बिना बचपनके ही जवान बन गया हो। जिस कमीकी वजहसे वही पुरानी निकम्मी बातें और वही मजमून जो फारसी में बेहद पाये जाते हैं और जिनको जिस मुल्कसे कोअी ताल्लुक नहीं है, जिस अिमारतकी बुनियादके पत्थर बन गये। शुरू-शुरूमें तो अर्दूमें फारसी शेरोंका सिर्फ लफ्जी तर्जुमा ही होता था। लैला-मजनूँका अशक, शीरी-फरहादकी मुहब्बत, रुस्तम और अिस्फंदयारकी बहादुरी और जेहूँ सेहूँ नदियाँ, अुसी तरह अर्दूमें मौजूद रहीं जिस तरह फारसी शायरीमें थीं। वहाँके बुलबुल यहां बोलने लगे, नौसेरवाँका अिन्साफ़, हातिमकी सखावत (अुदारता) यूसफ़का हुस्न, बुलबुलका तराना, सम्बुलका लहराना सब कुछ यहां भी चल पड़ा। जिससे पता चलता है कि अर्दूकी शायरी कितनी रस्मी और लकीरकी फकीर है। फारसीके रंगमें यहां भी अशकके मजमून फितरतके खिलाफ बांधे जाने लगे, यानी मर्दका अशक मर्दके साथ बताया जाने लगा जो कि यहांकी फिजाँके लिये अेक बिलकुल अनोखी चीज थी। जिसके विपरीत हिन्दीकी कविता वास्तविक और प्रकृतिके अनुकूल होनेसे दिलमें बैठ जाती थी।

यह अेक ताज्जुबकी बात है कि अर्दूको अदबी सूरत शुमाली हिन्दमें न मिलकर दक्षिणमें मिली। हालाँकि अमीर खुसरो (स. १२५५-१३२४अ.) ने सबसे पहले अर्दू लफ्जोंका अिस्तेमाल अदबी लिहाजसे किया और अर्दू शेर कहे, फिर भी अुसकी जबानकी तर्ज अर्दूकी बनिस्बत हिन्दीके ही ज्यादा नज़दीक मालूम होती है। अुसने फारसीके बहरोंको अपनाया है। अुसकी पहेलियाँ, मुकरेनियाँ, अनमेलियाँ, दोसखुने वगैरह आज भी लोगोंकी जबान पर हैं। लेकिन असके बाद करीब-करीब साढ़े तीनसौ साल तक की कोअी खबर नहीं मिलती। यह

सिलसिला असके बाद ही टूट गया । चुनांचे असका महत्व कुछ कम हो गया ।

शुद्ध शायरीने सोलहवीं सदीके आखिरी हिस्सेमें अपना तराना फिरसे अलापना शुरू किया जो अबतक जारी है । असलिये शुद्धके साहित्यिक विकासमें अमीर खुसरोका स्थान अतने महत्त्वका न रहा जितना कि हिन्दीके साहित्यमें है ।

प्रोफेसर महमूद शेरानीने अपनी किताब 'पंजाबमें शुद्ध' में यह साबित करनेकी कोशिश की है कि शुद्धकी जन्मभूमि पंजाब है । (याद रहे कि प्रोफेसर महमूद शेरानी पंजाबके नहीं, यू. पी. के रहनेवाले हैं ।) मगर हमारे सामने जो सबूत पेश आये हैं उनसे तो हमारे अस कथनकी ही पुष्टि होती है कि शुद्धकी जन्मभूमि उत्तर नहीं बल्कि दक्षिण है ।

बीजापुर और गोलकूण्डके बादशाह शुद्ध-अदबके सबसे पहले हिमायती हैं । शुद्धके पहले शायर भी सुल्तान कुली कुतुबशाह हैं जो सल्तनत गोलकूण्डके बादशाह थे । अिनके बाद अिनके भतीजे सुल्तान मुहम्मद कुतुबशाह भी अच्छे शायर और शायरनवाज (शायरों पर कृपा रखनेवाले) थे । अिनके बाद शम्सुद्दीन वलीअल्ला खाने स, १७२२ अी. में दिल्ली जाकर अपने 'दीवाने रेख्ता' (रेख्ताका काव्य संग्रह) पर बड़ा नाम कमाया । यहां तक कि लोगोंने उन्हें 'बाबाअे रेख्ता'का खिताब दे दिया ।

अब अउनकी तर्ज पर दिल्लीमें भी शेर कहे जाने लगे और थोड़े ही दिनोंमें दिल्ली और लखनऊके नगाड़ोंकी आवाजमें दक्षिणकी ढोलककी आवाज किसीको न सुनायी दी । यहां तक कि लोग यह भी भूल गये कि जिस आमके मीठे-मीठे फल हम चख रहे हैं उसकी गुठली दक्षिणसे आयी थी ।

मुस्लिम सल्तनतोंकी तबाहीके जमानेमें शुद्धकी शायरीका तारा बलन्द हो रहा था असलिये असमें बहुत-सी खराबियां भी आ गयीं जिनका जिक्र हम आगे चलकर करेंगे । अंग्रेजोंके यहां आजानेके बाद शुद्ध दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करने लगी । वह राज-काज कोर्ट-अदालत की जवान करार दी गयी, स्कूलोंमें ठीक-ठीक ढङ्ग पर उसकी पढ़ाअीका अिन्तजाम हो गया और अुच्च अभिरुचिके लोगोंने उसे राष्ट्रभाषा बनानेका बीड़ा अुठाया जिससे वह आज अेक खास हैसियत रखती है । चुनांचे अस में शक नहीं कि असका अिनिहास रोचक और शिज्ञाप्रद होगा ।

दक्षिणके पुराने शायर

दीर्घाचा:—

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि झुर्दू शायरीकी अन्तर्दा दिल्लीसे बहुत दूर दक्षिणमें हुआ; और सो भी दक्षिणी ज़बानके नामसे। यूँ तो अल्ला-अहदीन खिलजीकी देवगिरी-दौलताबादकी फ़तहयाबीके बाद दिल्लीके बड़े-बड़े आलिमों (विद्वानों) और सूफियोंकी आमदरफ़्त (आवागमन) दक्षिणकी तरफ़ शुरू हो गयी थी; मगर जब स. १३४७ अ. के करीब बहमनी सल्तनत कायम हुआ तब यह आमदरफ़्त और भी बढ़ गयी।

क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि बहमनी राज गंगू नामके किसी ब्राह्मण की दुआका नतीजा है, अिसलिये यहांके अक्सर वज़ीर ब्राह्मण या कमसे कम हिन्दू होते थे। यह वज़ीर फ़ारसी जानते थे मगर फ़ारसी अ़नकी ज़बान न थी। अिसलिये अ़क न अ़क दिन फ़ारसीकी जगह झुर्दूका आ जाना लाज़िमी था। अिसी तरह हिन्दू रानियों और बेगमोंकी वजहसे जनानख़ानेमें भी झुर्दू की पहुंच-रसायी हो जाना जरूरी था।

अब सवाल यह अ़ठता है कि फ़ारसीकी जगह झुर्दूके बजाय किसी दक्षिणी भाषाने क्यों न ले ली? अिसका कारण यह था कि अ़क तो झुर्दू वहांके फ़ातिहोंकी ज़बान थी जिसे सीखनेमें जित हिन्दुओंका माली (आर्थिक) फ़ायदा था और अ़समें वे अपनी शान समझते थे जैसा कि आजकल अंग्रेज़ी के मुताल्लिक़ हुआ करता है। दूसरा कारण यह था कि जो विजयी वीर दिल्लीसे दक्षिण गये वे अपने साथ दिल्लीकी ज़बानको भी लेते गये जिसे वे हिन्दी कहते थे, मगर हकीकतमें जो मुश्किल झुर्दू ही थी। दक्षिणकी भाषाअ़ें अ़िस नयी भाषाके साथ मेल नहीं खाती थीं। बहमनी सल्तनत मराठी, कन्नड़ और तेलगु अ़िन तीन अ़लग-अलग भाषाओंके सूबोंमें बँटी हुआ थी। अ़िस-

लिये दरबारमें अिनमेंसे किसी अ्रेक जवानको तरजीह देना नामुमकिन था । तीसरा अ्रेक कारण यह भी था कि श्रीरान, फ़ारिस, अरब, अफ़ग़ानिस्तान वगैरह बाहरी मुल्कोंसे जो मुग़लमान दक्षिणमें जाते थे वह अपनेको वहांके निवासी मुसलमानोंसे अूँचा समझते थे जिससे अिन विलायती और देसी मुसलमानोंमें हमेशा लड़ायी-झगड़े होते रहते थे । अिन लड़ायी-झगड़ोंमें दक्षिणके अधिकतर हिन्दू राजाओं और जमीनदारोंने देसी मुसलमानोंका साथ देना मंजूर किया । अिनसे अुर्दूके प्रचारमें काफ़ी मदद मिली क्योंकि वहांकी देसी जवानों और फ़ारसीको जोड़नेवाली वही अ्रेक सामान्य भाषा अ़स वक्त प्रचारमें थी ।

अिससे अ्रेक बहुत बड़ा नुक़सान भी हुआ । अुर्दू शायरीकी अिन्तदा अगर अतरी भारतमें हुआ होती तो अ़समें अमीर ख़सरोकी जवानकी तरह बहुत-से हिन्दी छन्द और शब्द कसरतसे आ जाते जिससे हिन्दी और अुर्दूके बीच आज जो अ्रेक वसीअ (विस्तृत) खात्री मालूम हो रही है, वह हरगिज न होती । बल्कि यह गी, मुमकिन था कि किसी रोज यह दोनों जवानें गले मिलकर अ्रेक हो जातीं । मगर अफ़सोस है कि अ़सा न हो सका । दक्षिण में हिन्दीके ज़ैसा आसान अरज़ (पिंगल) न होनेके कारण तथा दक्षिणी भाषाओंके लफ़्ज अुर्दूकी आशिक़ाना शायरीके लिये नामौजू होनेकी वजहसे अुर्दूको अरबी तथा फ़ारसीके पिंगल और शब्दोंको मजबूरन् अपनाना पड़ा जो आज तक चला आ रहा है ।

हालाँकि बहमनी सल्तनतके पाँच टुकड़े हो गये थे, मगर अुर्दू अदबकी तारीख़को मद्देनज़र रखते हुअे सिर्फ़ दो ही सल्तनतें—बिजापूर और गोल-कूंडा—सोचने लायक़ हैं ।

गोलकूंडा

पहला शायर 'कुतबा' या 'मुआनी':--

सुलतान कुली कुतुबशाह स. १५८० अी. में गोलकूंडेकी गद्दी पर बैठे । यह खुद अच्छे शायर भी थे और शायरोंके क़द्रदां भी । अिन्हें फ़नेतामीर (भवन-निर्माण-कला) में बड़ी दिलचस्पी थी । अिनके जमानेमें अरब व श्रीरान तकसे बड़े-बड़े आलिम-फ़ाज़िल गोलकूंडेके दरबारमें आते थे और

अिनाम-अिकराम पाते थे । अिस बादशाहने अपनी माशूका (प्रेमिका) भागमतीके नाम पर 'भागानगर' बसाया जिसे आज-कल 'हैदराबाद' कहते हैं । अिन्होंने स. १६११ अी. में अिन्तकाल फरमाया ।

शायरीमें वे अपना तख़ल्लुस (अुपनाम) पहले 'कुतबा' और बादमें 'मुअानी' करते थे । यह पहले शख्स हैं जिनका अुर्दू कलाम (काव्य) संग्रह-की सूरतमें मौजूद है । आश्चर्यकी बात है कि अिनके कलाम पर हिन्दीका भी बहुत बड़ा असर पाया जाता है । अिनके दीवानके दीवाचेसे पता चलता है कि अिन्होंने पचास हजार शेर कहे थे, जिनमें मसनवियां, कसीदे, गजलें, तरजीहबंद, रुबाअियां वगैरह शामिल हैं । अिनके कलाममें दक्षिणी लफ़्ज भी बहुत हैं जो दिल्ली लखनऊमें नहीं चलते थे । फ़ारसीके साथ-साथ हिंदी के शब्दोंको भी अिन्होंने स्थान दिया है । हालाँकि और और अुर्दू कवियोंकी भांति अिनके भी खयाल, भाव, और छंद फ़ारसके मालूम होते हैं मगर अुन-पर हिन्दुस्तानीपनकी भी बहुत गहरी छाप है । अिनका प्रेममार्ग तो बिलकुल भारतीय ही है । यानी स्त्री प्रेमिका है और पुरुष प्रेम-पात्र । हिन्दी अुपमाओं और कथानकोंका भी बहिष्कार अिन्होंने नहीं किया । हिन्दू और मुस्लिम दोनों मजहबोंके त्यौहारोंपर वह शेर कहते थे और दोनोंकी तारीफ़ कर-करके खुश होते थे ।

अिनकी भाषा साफ़, सादा और मधुर-मीठी है । कलामका नमूना देखिये:—

“करते हैं दावा शेरका सब अपनी तबअसूँ ।

बरखा फ़सीह शेर 'मुअानी' ने तयीं खुदा ॥”

अिनके बाद अिनके भतीजे सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह स. १६११ अी. में सल्तनतके मालिक हुअे । ये भी अच्छे शायर और शायरोंके आश्रय-दाता थे । अिन्होंने अेक दीवान फ़ारसीका और अेक दक्षिणी (अुर्दू) का यादगार छोड़ा है । अिनकी जबानमें सफ़ाई, सादगी और मिठास पायी जाती हैं । अिनकी मृत्यु स. १६२५ अी. में हुअी । यह अपना तख़ल्लुस 'जिल्ले अलाह' किया करते थे ।

अिनके बेटे अब्दुल्ला कुतुबशाह 'अब्दुल्ला' भी अच्छे कवि थे ।

अइनके दरबारमें कच्ची आला दर्जेके शायर थे। अइननिशाती---जिसने 'फूलवान' नामकी मशहूर मसनवी लिखी थी, अइनहींके आश्रयमें था। मौ० वजही, जिन्होंने स. ११०५ अ. के आसपास 'सबरस' नामक गद्य प्रेम-कथा लिखी जिसकी भाषा तुकबन्दी-पूर्ण और दक्षिणी शुर्दू है, अइनहींके जमानेमें थे। अिसी समय तहसीनुद्दीन नामके कविने 'कामरूप और कला' नामकी मसनवी लिख कर चारों तरफ धूम मचा दी। अिसमें अवधके राजकुमार कामरूप और सिंहलकी राजकुमारी कलाका प्रेमवर्णन है। सुलतान अब्दुल्ला ने स. १६७२ अ. तक राज किया। अइनके बाद अबुलहसन कुतुबशाह स. १६८७ अ. तक तख्त पर रहे। ये भी अच्छे शायर थे और 'तानाशाह' तखल्लुस करते थे। अइनके जमानेमें 'शुजाउद्दीन 'नूरी' गुजराती नामका श्रेक शायर हुआ है जिसे कुछ दिन पहले शुर्दूका पहला शायर समझा जाता था।

बिजापूर

गोलकुंडेकी तरह यहां भी शायरोंका जमघट लगा रहता था। दूसरे अिब्राहीम आदिलशाह (स. १५८०-१६२६ अ.) के दरबारमें 'मुल्ला जहूरी' नामका श्रेक मशहूर शायर था जिसने 'खवाने खलील' और 'गुलज़ारे अिब्राहीम' नामके दो ग्रंथ लिख कर राजाको नज़र किये। खुद अिब्राहीम आदिलशाह भी अच्छे शायर थे और अुन्होंने हिन्दी गान-विद्या पर 'नौरस' नामकी श्रेक पुस्तक लिखी है।

अइनके साहबजादे (सुपुत्र) अली आदिलशाह (दूसरे) शायरों और आलिमोंकी कद्र करते थे। अिन्होंने 'नौरसनामा' नामकी श्रेक किताब लिखी है। अइनके दरबारमें मुहम्मद नसरत 'नसरती' नामका अच्छा कवि था जिसने 'अलीनामा' नामक श्रेक बड़ी मसनवी दक्षिणी शुर्दूमें लिखी। अिसमें हज़रत अलीकी प्रशंसा थी। यह मसनवी लोगोंमें अितनी मकबूल हुअी कि अिसका लेखक मलिकुरशुअरा माना गया।

अिसी जमानेमें मशहूर अंध-कवि हाशिमी भी हुआ जिसने दक्षिणी शुर्दूमें 'यूसुफ जुलेखा' नामकी मसनवी लिखी। अिसने भारतीय प्रेमपद्धतिको अपनाया था। यह हिन्दीका भी अच्छा कवि था।

‘वली’

स. १६६६—१७४४ आ.:-

शम्सुद्दीन वलीअल्लाखां ‘वली’ अहमदाबाद गुजरात के रहनेवाले थे+। कुछ दिन पहले तक अन्हें झुईका आदि कवि माना जाता रहा है, और असलिये ये ‘बाबाअरे रेखता’ कहलाते हैं। अन्होंने सैर-सफ़र बहुत किया था जिससे अिनके काव्यमें सातारा, दिल्ली, सूरत, और बंगाल जैसे दूर २ के शहरों और सूबोंका जिक्र मिलता है।

यह स. १७०० आ. के करीब दिल्ली गये और शाह सादुल्ला ‘गुल-शन’ से अन्होंने सूफ़ी धर्मकी दीक्षा ली। लेकिन अस वक्त अुनकी किसीने कद्र नहीं की असलिये वह वापस आ गये और स. १७२२ आ. में फिर दिल्ली गये। अबकी बार अिनके ‘दीवाने रेखता’ बड़ा जर्चा हुआ; यहां तक कि दिल्लीके नामी अुस्ताद ‘खाने आरजू’ नाजी ‘मजमून’ ‘आवरू’ वगैरहने अिनके कलामकी पैरवी (अनुकरण) की और दिल्लीकी शायरीके यह सबसे पहले अुस्ताद माने जाने लगे।

अिनकी ज़बान निहायत दिलचस्प, रंगीन और आसान है। किसी धर्म या पंथसे अन्हें द्वेष या विरोध नहीं था। असलिये अिनकी भाषा गंगा-जमनी, आडंरशून्य और बिककुल सादी है। हिन्दी लफ्ज़ भी फ़ारसी लफ्ज़ों के साथ जाबजा मिले हुये हैं। कलामका नमूना देखिये:-

जिस वक्त अै सरीज़न ! तू बेहिजाब होगा।

हर ज़र्रा तुम्ह भलकसूं जूं आफ़ताब होगा ॥

मत जा चमनमें लाला, बुलबुल प’ मत सितम कर।

गरमी सैं तुम्ह निगहकी गलगल गुलाब होगा ॥

मत आअिनाको दिखला अपना जमाले रोशन।

तुम्ह मुखकी ताब देखे आअीना आब होगा ॥

निकला है बह सितमगर तेगे अदा कूँ लेकर।

सीने प’ आशिक़ाँके अब फ़तहयाब होगा ॥

रखता है क्यूँ जफ़ा को मुम्हपर रवा अै जालिम।

+कुछ लोगोंकी यह भी राय है कि यह दक्षिणी थे।

महशरमें तुझसे आखिर मेरा हिसाब होगा ॥
 मुझको हुआ है मालूम मैं मस्त जामखूनी ।
 तुझ, खड्गियांको देखे आलम खराब होगा ॥
 हातिफने यूँ दिया है मुझको वली बशारत ।
 उसकी गलीमें जा तो मकसद शिताब होगा ॥
 वलीको अर्दू चॉसर कहा जाता है । अिनके साथ अर्दूकी शायरी देहलीमें
 आ गयी और अर्दू ज़बान फ़ारसीके मुक़ाबलेमें खड़ी हो गयी ।

सिराजः—

(स. १७१२-१७६२) सैयद सिराजुद्दीन 'सिराज' औरंगाबादके रहनेवाले
 अिन्होंने एक फ़ारसीका और एक रेख्तेका अिस तरह
 दो दीवान लिखे । अिनका कलाम आसान और सादा है । तकल्लुफ़ व बना-
 वटका नामोंनिशान तक नहीं है । वलीने जो पौदा दक्षिणमें जमाया था अुसे
 अपनी मेहनतसे हरा-भरा करनेका काम सिराजने किया । अिसलिये अिन्हें
 दक्षिणके अुस्ताद कहते हैं ।

अिस ज़मानेमें दक्षिणमें और भी बहुतसे मशहूर शायर हुअे जिनमें
 'आजिज़' 'यार' 'शहीद' वगैरह हैं । मद्रास और कर्नाटकमें भी बहुत
 से शायर गुजरे हैं ।

अर्दू ज़बान जब देहलीसे दक्षिणमें आयी तो स्वाभाविकरूपसे अुसमें
 बहुत-सी तब्दीलियां हो गयीं । और बहुतसे नये नये शब्द भी आ घुसे ।
 अिससे वह दिल्लीकी 'अर्दूअे मुअल्ला' न रहकर 'दक्षिणी अर्दू' या सिर्फ
 'दकिनी' बन गयी । अिसके अलावा यह भी एक ग़ौर करनेकी बात है कि
 दिल्लीकी ज़बानमें जो तरकी व तब्दीली होती गयी अिससे दूरीकी वज़हसे
 दक्षिणी ज़बान आगाह न रह सकी और अिसका ढांचा वही पुराना रह गया;
 जिससे वह अर्दूसे जुदा मालूम होने लगी । फिर भी यह कहा जा सकता है
 कि वह अर्दूका ही दूसरा रूप है ।

अध्याय तीसरा

दिल्लीकी महफिलें

(हातिम व आरजू)

प्रारंभिक :

यूँ तो शाहजहाँ और औरंगजेबके जमाने तक दिल्ली और अ़सके आस-पासके मुल्ककी आम ज़बान अ़र्दू हो गई थी । अ़िसीका दूसरा नाम खड़ी बोली था । लेकिन अ़स वक़्त तक अ़र्दूमें अ़दब लिखना जायज़ न समझा गया जब तक कि दक्षिणसे वली अपने 'दीवाने रेख़्ता' की सौगात (भेंट) लेकर देहली न आया । अ़िससे पहले कोअ़ी फ़ारसी शायर कभी कभी अ़र्दू शेर कह लिया करता था मगर मुहम्मद शाह (रंगिले) के जमाने तक वह अ़दबी ज़बान न बन सकी ।

अब ज़रा ग़ौर करके देखिये कि यह ज़माना अ़र्दूकी शायरीके लिखे कितना मौज़ूँ था । दिल्लीका बादशाह और दरबारी लोग सियासत (राजनीति) से बिल्कुल नावाकिफ़ और रंगिले थे । मराठों और रुहिलोंके हाथमें तलवार थी; वह जो चाहे कर सकते थे । नालायक शाही सरदारों और अ़मीरोंने जब देखा कि खुद बादशाह जंगके मैदानसे दूर भागता है, तो अ़न्होंनेभी तलवारोंको फेंक कर क़लम पकड़ ली और कविता लिखने लगे । आये दिन मराठे और रुहिले हमले करके लूट-खसोटसे हिन्दोस्तानकी राजधानीको तबाह कर रहे थे पर शाह और सरदार खयाली माशूक़की अ़दश्य कमरकी खोजमें पागल थे ।

वलीके दीवनकी ज़बान दक्कनी थी । दिल्ली आकर अ़समें बहुतसी तब्द-लियां हो गयीं, बहुतसे भद्दे अ़लफ़ाज़ और मुहावरोंकी कांट-छांट हो गयी । वलीकी भाषा देसी और छंद बिदेसी थे । मगर अब धीरे-धीरे भाषा भी अधिकाधिक विदेशी बनने लगी । अ़िस वक़्त कलाममें यक़रंगीकी कमी थी;

और भेदे तथा अशिष्ट लफ्जों की शिद्दत (अधिकता)। तसव्वुफ़ (सूफीधर्म) के रंगमें वह डूबी हुआ थी जो कि फारसीकी सिर्फ़ नक्कली थी। भाव तथा भाषामें काफी सादगी थी पर वह धीरे-धीरे कम होने लगी थी। बंदिश ढीली रहती थी, क़वायदकी पाबन्दी ठीक ठीक नहीं होती थी और फ़िज़ूलकी बातें भी झुसमें बहुत आती थीं।

अस ज़मानेमें ज़बानका स्वरूप भी आजके स्वरूपसे कुछ अलग था।

मसलन्:—

‘से’	के बदले	‘सो’ ‘मूँ’	या	‘सेती’	चलता था।
‘को’	” ”	‘को’ ‘कूँ’		”	”
‘दुनियामें’	” ”	‘जगमने’		”	”
‘जाता है’	” ”	‘जावत है’		”	”
‘दिल’	” ”	‘मन’		”	”
‘तरफ़’	” ”	‘ओर’		”	”
‘जाती थीं’	” ”	‘जातिबां थीं’		”	”

मगर अिनको ग़लत समझकर उन्हें निकाल-डालनेकी कोशिशें हो रही थीं, जिसका नतीजा यह हुआ कि अेक अरसेके बाद यह लफ्ज़ मतरूक (त्यक्त) समझे जाने लगे



हातिम:—

सं० १६६६— शेख जहूरुद्दीन शाह ‘हातिम’ दिल्लीके रहने वाले थे।

१७६१ ओ. कुछ दिनोंके लिये यह अ़म्दतुलमुल्क अमीर ख़ाँके मुसाहिब (पारवर्तता) रहे लेकिन बादमें फ़क़ीरी अख़्तियार की। पहले यह ‘रम्ज़’ तख़ल्लुस करके फ़ारसीमें अ़न्शा-परदाज़ी (लेखन) करते थे मगर जब वलीकें ‘दीवानेरेख़ता’ की देहलीमें धूम मच गयी तो अ़न्होंने भी दो दीवाने रेख़तेके लिख डाले जिससे वह रेख़तेके अ़स्ताद माने गये। अ़न्होंने जो पहला दीवाने शाया किया वह बहुत बड़ा होनेकी वजहसे अ़सीमेंसे काट

छांटकर अन्होंने अ़ेक छोटा दीवान बनाया । अ़िसका नाम 'दीवानज़ादा' रखा गया । अ़िनका अ़ेक दीवान फ़ारसीमें भी मिलता है । अ़िनहोंने अ़ेक मसनवी 'हुक्के' पर लिखी है ।

फ़ारसीमें यह 'सायब'को और अ़ुर्दूमें 'वली' को अ़ुस्ताद मानते थे । अ़िनके बीसों शागिर्द थे; जिनमेंसे मिर्जा मुहम्मद रफ़ी 'सौदा'ने अ़िनके बलन्द नाम पर चार चाँद लगा दिये । भाषाकी काटछाँट और ज़बानकी दुरुस्तीका जो काम अ़िनहोंने शुरू किया वह सौ बरस बाद 'ज़ौक' 'आतिश' और 'नासिख' के ज़मानेमें पूरा हो गया । अ़िनका मर्तबा (स्थान) अ़ुर्दू अ़दबमें निहायत आला और मुमताज़ (प्रतिष्ठित) माना जाता है ।

अ़िनकी ज़बान साफ़, ग़ादा और शुद्ध है । क़लामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअिये:—

छुपा नहीं जा बजा हाज़िर है प्यारा ।
 कहाँ वह चश्म ? जो मारें नज़ारा ॥
 जुदा नहीं सब सेती तहक़ीक़ कर देख ।
 मिला है सबसे औ, सबसे है न्यारा ॥
 मुसाफ़िर अ़ुठ ! तुझे चलना है मंज़िल ।
 बजे है कूचका हरदम नकारा ॥
 मिसाले बहर मौज़ें मारता है ।
 किया जिसने अ़िस जगमूँ किनारा ॥
 सयाने खल्कसे यूँ भागते हैं ।
 कि जूँ आतिश सेती भागे है पारा ॥
 समझकर देख सब जग सीख माही ।
 कहाँ हैगा सिकन्दर काँ है दारा ॥
 कहे हैं अ़हले अ़ुफ़ाँ अ़ुंसको जीता ।
 जो मरकर अ़िशक़में दुनियाँभूँ हारा ॥
 सफ़ाकर दिलके आअ़ीनेको हातिम ।
 देखा चाहिये सज़न गर आशक़ारा ॥

अ़िनकी भाषा पर पुराने ढंगकी क़वायदका काफ़ी असर मिलता है ।

आरजू

(स० १६८६-१७५६ आ.) सिराजुद्दीन अलीख़ाँ 'आरजू' आगरेके रहने-वाले थे मगर दिल्ली आ बसे थे। यह फ़ारसी के मशहूर आलिम और नामवर शायर थे। 'मीर' 'सौदा' 'मज़हर' 'दर्द' वगैरह अब्बल दर्जेके शायर अन्हें अस्ताद् मानते थे। मीर हसनने अपने 'तज़किरा अश्शुअरा' (कवि-चरित्र) नामके ग्रंथमें तो यहाँ तक कह डाला है कि "अमीर खुसरो देहलवीके बाद आरजूही हिन्दुस्तानके सबसे बड़े शायर हैं।"

अन्होंने फ़ारसीमें तीस हजार शेर कहे हैं। अिनकी अुर्दू तस्नीफ़ें (रचनाअें) फ़ारसी तस्नीफ़ोंकी बनिस्बत बहुत कम हैं फिर भी अन्होंने अपनी अुस्तादीकी वजहसे अुर्दू जबानकी जो ख़िदमत की है वह हमेशा याद रहेगी। अिनकी मशहूर तस्नीफ़ें यह हैं:—'सिराजुल्लुगात' 'गरायबुल्लुगात' 'नवादिरुल अलफ़ाज' 'तंबीहुल गाफ़िलैन' 'मजमा अुल नफ़ायस' 'तज़किराअे आरजू'...

अिनकी जबान मुश्किल किन्तु साफ़ और मीठी थी। नमूना देखिये:—

‘आता है हर सहर झुठ तेरी बराबरी को ।

क्या दिन लगे हैं देखो खुरशीद खावरी को ॥

अुस तन्दखू सनमसे जबसे लगा हूँ मिलने ।

हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को॥

मज़हर;—

(स. १६६८-१७८० आ.) मिर्जा जानजानाँ 'मज़हर' का जन्म मालवेमें हुआ था और अिनका जान-

जानाँ नाम औरंगज़ेब बादशाहने रखा था। यह जातिके हनफीमुन्नी थे मगर बादमें सूफ़ी फ़कीर हो गये। अिनके शागिर्दोंमें हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मोंके अनुयायी होते थे। अपने अेक ख़ुबसूरत नौजवान दोस्त व शागिर्द 'मीर अब्दुल हअी 'ताबॉ' से यह बहुत मुहब्बत रखते थे।

शीअोंके मज़हबके ख़िलाफ़ चंद लफ़्ज कहने पर यह फ़ौलाद ख़ाँ नामक शीअ शख्सके द्वारा रातके समय धोखेसे मार डाले गये।

अन्होंने अक पुरा दीवान फारसीका और अक अधूरा दीवान अर्दूका यादगार छोड़ा है । अन्हिका तजुर्बा बहुत बढ़ा चढ़ा था जिससे अन्हके कलाममें दिलको छूकर पिघलानेवाला मजमून बहुत ज़्यादा है । आशिकाना रंग अन्हिकी खासियत है । ज़बानको साफ़ करनेमें अन्हिका बहुत बड़ा हाथ था । आखिरी अुम्रमें सूफियाना रंग ज़्यादा गाढ़ा हो गया था जिससे जगह जगह पर नसीहत-के गुलाब खिले हुअे पाये जाते हैं । '

कलामका नमूना देखिये:—

गचें अलताफ़के काबिल य' दिले जार न था ।
लेकिन अिस जौरोजफ़ाका भी सज़ावार न था ॥
लोग कहते हैं मुअ्या मज़हरे बेकस अफ़सोस ।
क्या हुआ अुसको ? वह अितना भी तो बीमार न था ॥
जवाँ मारा गया खूबाँके बदले मीरजा मज़हर ।
भला था या बुरा था, जो कुछ था खूब काम आया ॥

अिस ज़मानेमें और भी बहुतसे आला दर्जेके शायर हुअे जिनमें जैल (नीचेके) मशहूर हैं:—

(१) शाह मुबारक 'आबरू' (स० ११७००-११७५० अ.) अन्हिन्हें अर्दू शायरोंके रहबर (पथ-प्रदर्शक) कहा जाता है ।

(२) शेख शरफ़ुद्दीन 'मजमून' (मृत्यु स. १७४५ अ.)

(३) सैयद मुहम्मद शाकिर 'नाजी' यह कविता अच्छी करते से पर हर शख्सके कलाममें अ़ैब निकाला करते थे ।

(४) मीर अचदुल हअ़ी 'ताबाँ' ;—अन्हिन्हें 'दूसरा यूसुफ़' कहा करते थे । अन्हिकी खूबसूरतीकी शुहरत यहाँ तक हो गयी थी कि खुद शाह आलम बाद-शाह भी अन्हिन्हें देखनेको हाथी पर गये थे ।

(५) गुलाम मुस्तफ़ा 'यकरंग' :—अन्हिका कलाम निहायत सादा है ।

(६) अशरफ़ अली ख़ाँ 'फ़ुग़ाँ' :—अन्होंने हिन्दी मुहाविरोंका अच्छा अिस्तेमाल किया है ।

अभ्यास चौथा मीर और सौदा

तमहीद (भूमिका) :—

अस जमानेमें अर्दू शायरीके आसमानमें दो ऐसे रोशन सितारे चमकते रहे जिनकी रोशनी आज भी हमारी आँखोंको चकाचौंध कर देती है यह सितारे हैं मिर्जा मुहम्मद रफी 'सौदा' और हजरत मीर तकी 'मीर' । अिनकी हस्ती से शायरीका यह दौर सबसे बड़ी तरक्कीका दौर समझा जाता है । अससे पहलेके जमानेके शायर अर्दू अदबके वालिद और रहवर थे ; मगर अस वक्तमें सखुन (काव्य) के तमाम गुण कमाल दर्जे तक पहुँच गये । 'सौदा' 'मीर' 'दर्द' 'सोज' वगैरह फ़न (कला) के बेनज़ीर व बेमिसाल अस्तादोंने अस अहदको रोशन किया है ।

यह वही जमाना है जिसमें दिल्लीकी सल्तनतको अंग्रेज़ोंने अपने कब्ज़े में कर लिया और सारे हिन्दुस्तान भरमें एक सनसनी-सी फैला दी । बादशाह और अमीरोंका आश्रय टूट जानेकी वजहसे अस कालके शायरोंको दिलशिकस्ता (भग्न-हृदय) होकर दिल्ली छोड़नी पड़ी । अस वक्तके दिल्लीके बादशाह खुद शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे । लेकिन अउनकी शायरीकी मुहब्बत अस दर्जे तक पहुँची कि असकी वजहसे अन्हें अपनी सल्तनतसे हाथ धोकर अंग्रेज़ोंकी कैदमें पड़ा रहने पड़ा ।

अस अहदमें ज़बान पर फ़ारसियतका बहुत ज़्यादा ग़लबा (प्रधानता-प्रभाव) हुआ जिसकी वजह यह मालूम होती है कि अस जमानेके शायरोंने फ़ारसीके आखिरी कवियोंके कलामको सामने रखकर शायरी शुरू की थी ।

भाषाकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह मालूम होता है कि अस जमानेमें पुरानी हिन्दी और दक्कनी अर्दूके बहुतसे शब्द और शब्द-प्रयोग मतरूक हो गये । फिर भी कुछ तो चलते ही रहे जैसे :—

‘तूने’	की	जगह	‘ते’	अस्तिमाल	होता था ।
‘जरा’	„	„	‘टुक’	„	„
‘कबतक’	„	„	‘कबलग’	„	„
‘बात’	„	„	‘बचन’	„	„
‘लगा’	„	„	‘लागा’	„	„

लिंगभेद पर भी अस्ति वक्त ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता था जिससे श्रेक ही शब्द जिसे मीर साहब पुल्लिंगमें प्रयुक्त करते थे, सौदाकी कवितामें स्त्रीलिंग धारण करता था । अस्ति जमानेमें भाषाकी जो खराद व तराश हो गयी उससे यह श्रेक आम रिवाज-सा हो गया कि ज़बानकी दुरुस्तीके नामपर फ़ारसियतकी कसरतसे ज़बानको ज़्यादा मुश्किल बनाया जाये । अस्तिका नतीजा यह हुआ कि अर्दू आम लोगोंकी ज़बान न होकर श्रेक खास अदबी और शहरी फ़िरके की ज़बान बन गयी । नयी बहरें मसलन् ‘वासोख्त’ ‘मुसल्लस’ वगैरह ज़बानमें दाखिल हो गयीं । ‘हजो’ और ‘कसीदे’ को खास मर्तवा हासिल हुआ । गज़लोंको आम लोगोंकी मक़बूलियत (पसंदगी) मिल गयी । अर्दू और फ़ारसी शायरोंके बहुतसे तज़क़रे (अस्तिवृत्त) फ़ारसी ज़बानमें तैयार हो गये जिनमें ‘मीर’ का निकातुश्शुअरा और ‘हसन’ का ‘तज़क़िराअशुअराअे अर्दू’ बहुत मशहूर हैं ।

सौदा:—

(स. १७१३-१७६६ अ.) मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ीअ ‘सौदा’ दिल्लीके रहनेवाले थे । अस्तिन्होंने ख़ाँ आरज़ूके सत्संगसे बहुत कुछ लाभ अशुठाया ।

पहले यह फ़ारसीमें शायरी करते थे मगर ख़ाँ साहबने अस्तिन्हें समझाया कि ‘अगर तुम अपने कलामको आम व खासमें मक़बूल (पसन्द किया गया) कराना चाहते हो तो अर्दू लिखा करो ।’ बात ठीक भी थी । थोड़ी सी मेहनतसे प्रसिद्धि पानेके लिये अस्ति वक्त अर्दू बिलकुल मौज़ू थी । ‘सौदा’ फ़ट मान गये और अस्तिन्होंने अर्दूकी तरफ़ तवज्जुह फ़रमायी और अस्तिसी फ़रमायी कि उसके बादशाह बन बैठे । अस्तिन्हें अर्दूका ‘खाकानी’ और ‘अनवरी’ (फ़ारसीके बहुत मशहूर शायर) कहना बजा होगा ।

यह शाह हातिमके शागिर्द थे। लेकिन शायरीके आसमानमें अिनकी रोशनी अितनी तेज़ीसे फैल गयी कि वह आफ़ताब (सूर्य) मालूम होने लगे और अुनके सामने शाह हातिम अेक टिमटिमाता सितारा लगने लगे। यह अितने मशहूर हो गये कि शाह आलम बादशाह भी, जो 'आफ़ताब तख़-ल्लुस करते थे, अिनके शागिर्द बन गये। मगर अिनकी खुददारी (स्वाभिमान) की वजहसे अुनके साथ ज़्यादा असें तक यह न रह सके। शाही मुलाज़िमतके छूट जाने पर भी वह बसंतख़ाँ वगैरह रअ़ीसोंकी मददसे आरामसे रहते थे। दिल्ली छोड़कर बाहर जानेका अिनका मंशा न था, यहाँ तक कि लखनअ़के नवाब शुजाअुद्दौलेके बुलाने पर भी वह वहाँ न गये। लेकिन अपने दोस्तोंके चल बसनेके बाद अुन्हें मजबूरन दिल्ली छोड़नी पड़ी। साठ बर्षकी अुम्रमें वह लखनअ़ू चले गये और वहीं दफ़न हुअ़े। वहाँ अिन्हें छः हज़ार रुपये सालाना मुशाहरा मिलता था। नवाबसे अिन्हें 'मलिकुशुअ़रा' का ख़िताब भी मिला था।

सौदाको अिस बातका फ़ख़ हासिल है कि अिनका कलाम अिनकी ज़िन्दगी ही में मशहूर हो गया था। अिनके 'दीनाने रेख़ता' में ग़ज़ल, रुबाअ़ी मुस्तज़ाद, क़िता, पहेली, वासोख़्त, तरजीहबंद, मुखम्मस वगैरह कई तरहकी कविताअ़ हैं मगर फिर भी क़सीदा और हजो अिन दो प्रकारोंमें वह बेजोड़ रहे। आज तक अिस विभागमें अुनकी बराबरीका कोअ़ी कवि नहीं हुआ है। अुनकी हजोंमें जुलबुलापन और ताना बहुत ज़ोरदार है। मगर कभी कभी वह बेशर्माके दर्जे तक पहुँच जाता है।

ज़बानकी दुरुस्तीमें अिनका बहुत बड़ा हाथ है। जो बुनियादे वली और शाह हातिमने कायम की थीं अुन्हींपर सौदाने अपना रफ़ीअ़ (बलन्द) और शानदार महल तैयार किया। अिन्हें ज़बानपर पूरी कुदरत (प्रभुत्व) और शेरपर पूरी हुकूमत हासिल थी। अिनका कलाम बिल्कुल सौँचेमें ढला हुआ मालूम होता है। लफ़्ज़ोंको अपने मुकामपर अ़ैसा रखते हैं मानों अँगूठी में नगीने जड़े गये हों। अगर कोअ़ी लफ़्ज़ भूल जाय तो अुसकी जगहपर दूसरा लफ़्ज़ नहीं रखा जा सकता। अिन्होंने हालाँकि हिन्दीका बिल्कुल बहिष्कार नहीं किया है फिर भी अुनकी दृष्टिसे अुर्दूमें हिन्दीके जो शब्द ख़ट-

कते थे उन्हें उन्होंने चुन-चुनकर निकाल बाहर किया है। कुछ लोगोंकी राय में सौदाने फ़ारसी और हिन्दीके मिलापसे एक ऐसी ज़बान पैदा की जिसे अवामकी मकबूलियत हासिल हुआ। ख़यालोंकी बलन्दी और नज़ाकतको मद्देनज़र रखते हुआ हम यह कह सकते हैं कि वह उर्दूके 'स्पेन्सर' थे।

अिनके कलामकी सबसे बड़ी कमी यह है कि उसमें तसव्वुफ़की चाशनी नहींके बराबर है जिससे वह ज़्यादा देर तक दिलमें घर नहीं कर सकता। दूसरी बान यह है कि अिनकी ग़ज़लोंमें सोज़ (जलन) गुदाज़ (कोमलता) और सादगी नहीं पायी जातीं जो ग़ज़लकी जान हैं। हकीकतमें ग़ज़लगोत्री अिनकी प्रकृतिके विरुद्ध ही थी।

मिर्जाकी तसनीफ़ें यह हैं:—

(१) फ़ारसीका मुख़्तार दीवान । (२) चन्द फ़ारसी क़सीदे । (३) उर्दूका मुकम्मिल दीवान । (४) उर्दू शायरोंका तज़क़िरा तथा बहुत-सी मसनवियाँ, क़सीदे वग़ैरह । एक किताब 'अ़िवरतुल गाफ़िलैन' नामकी अ़िन्होंने 'मकी' कविकी आलोचनामें लिखी है।

अ़िनकी ज़बान साफ़, सादा, चुस्त और मीठी है। अ़रबी और फ़ारसी शब्दोंको कसरतसे अ़िस्तेमाल करने पर भी उसमें पढ़नेवालोंके दिलको खींचने की ताक़त है। कलामका नमूना देखिये:—

जो गुज़री मुझ पै मत अ़ुससे कहो हुआ सो हुआ ।

बिलाकुशाने मुहब्बत पै जो हुआ सो हुआ ॥

मुबादा हो कोअ़ी ज़ालिम तेरा गरेबाँगीर ।

मेरे लड्डूको तु दामनसे धो हुआ सो हुआ ॥

पहुँच चुका है सरेज़ख़म दिल तक यारो ।

कोअ़ी सेव कोअ़ी मरम करो हुआ सो हुआ ॥

कहे है उनके मेरी सरगुज़रत वह बेरहम ।

यह कौन ज़िक़ है जाने भी दो हुआ सो हुआ ॥

यह कौन हाल है अ़हवाले दिल पै अ़ै आँखो ।

न फ़ूट-फ़ूटके अ़ितना बहो , हुआ सो हुआ ॥

दिया उसे दिल व दीं अब यह जान है सौदा ।
फिर आगे देखिये जो हो सो हो, हुआ सो हुआ ॥



किया कलाम यह सौदासे अक़ ग़ाफ़िलने-
किसीसे रब्त कोअरी ज़ेरे आसमाँ न करे ॥
किया तो तज़ुर्बा अ़न दोस्तोंको बद पाया ।
बदीका जिन प' किसी तरह दिल गुमान न करे ॥
यह सुनके अ़ससे कहा मुस्कराके सौदाने ।
शिकायत अ़ितनी किसीकी कोअरी बयान न करे ॥
भले वुरे के तुम्हे अ़िम्तहानसे क्या काम ।
यह शुक्र कर कि तुम्ह कोअरी अ़िम्तहाँ न करे ॥

मीरः—

(स० १७२०-१८०६ अ०) मीर मुहम्मद तर्की 'मीर' दिल्लीके रहने तकरीबन वाले थे: पर पेटकी फ़िकने अ़िन्हें लखनऊ घसीटा । ख़ाँ आरजूके यह भौंजे थे जिनके यहाँ रहकर अ़िन्होंने अ़िब्त-दाअरी तालीम हासिल की थी । जब तक दिल्लीमें थे, शाही दरबार और अ़मीर अ़ुमराकी महफ़िलोंमें अ़िनकी बड़ी अ़िज्जत और क़द्र थी । मगर शाह आलमका खजाना ख़ाली था और अ़िनका खुददार मिज़ाज अ़िन्हें किसीकी चापलूसी करनेकी अ़िजाज़त न देता था: जिससे मजबूर होकर स. १७८३ अ०-में यह लखनऊ चल दिये । पर वहाँ भी अ़िनकी बददिमागीने नबाब आसफ़ुद्दौलाके साथ झगड़ा कर लिया और यह अपनी जिन्दगी फ़िक और मिस्कीनी (दरिद्रता) में बिताते रहे । अ़िनकी सारी जिन्दगी सोज व गुदाज़से भरी हुआ है, जिसका अ़ुनके कलाम पर भी पूरा पूरा असर पड़ा ।

सौदाके बाद 'अुर्दू ज़बानके सबसे बड़े शायर' मीर ही हैं । लेकिन कुछ लोगोकी शायमें 'मीर' का दर्जा 'सौदा' से बड़ा चढ़ा है । जो हो, हम तो समझते हैं कि दोनोंका महत्व अ़क-सा ही बड़ा है । मीरमें खुद-पसन्दी बेहद थी जिसकी छाप अ़ुनकी कवितामें जा-बजा मिलती है । अ़िन्होंने 'अ़जगर

नामा' नामकी अंक मसनवी लिखी है जिसमें दिल्लीके शायरोंके खिलाफ बहुत गर्द व गुबार अड़ाया है। जिसकी आड़में भी अनुकी अमिता दजेकी खुददारी ही है। यह खुद अपनेको और सौदाको पूरा शायर मानते थे और दर्दको आधा। किसीने पूछा, और 'सोज?' वह बोले, 'क्या सोज भी शायर है? खैर तो उसे भी समझ लो पाव!' जिस तरह अनुकी दृष्टिसे कुल शायर हो गये पौने तीन!

अनके कलामकी जबान निहायन शुस्ता (शुद्ध) साफ़, सादा, फ़सीह, तीर व नशतरका काम करनेवाली और असरसे ममलू (परिपूर्ण) है। बयान असा पाकीजा और दिलावेज (मनोहर) है, जैसे बातें करते हैं। ओज और प्रसादगुणके साथ साथ करुणारसका भी अच्छा परिपाक हुआ है। छोटी छोटी बहरोमें काव्यामृत भर देनेकी कलाके तो वह बादशाह थे। इसीलिये अन्हें अर्दूके 'शेख सादी' कहते हैं। अनके कलाममें दिलकशी और जोर कूट-कूटकर भरे हुए हैं। अर्दू वासोख्त, मुसल्लस और मुरब्बा अन तीन काव्यप्रकारोंके संशोधक मीर ही हैं। अनके कलाममें कहीं कहीं फ़िजूल और फ़हश (अश्लील) लफ़्ज भी आये हैं।

अनकी तसनीफें कसरतसे हैं। वैसे तो अनके दीवानमें ग़ज़ल, रुबायी, मुस्तजाद, किता, मुसल्लस, वासोख्त, मुरब्बा वगैरह शायरीकी बहुत-सी किस्में मौजूद हैं मगर फिर भी मीरका नाम रोशन किया ग़ज़लों ही ने है। अनकी ज़िन्दगीमें ही अनकी ग़ज़लें अतनी मशहूर हो गयीं कि लोग तोहफे के तौरपर अनकी ग़ज़लें ले जाया करते थे। अनके रेख़तेके छह दीवान हैं जिनमें किस्म-किस्मकी नज़में हैं। अंक दीवान फ़ारसीका भी है। मसनवियाँ बहुत-सी हैं जिनमें 'अज़गरनामा', 'शोलअे अशक़', 'जोशे अशक़', 'दरियाअे अशक़', 'ख़्वाबो ख़याल', वगैरह मशहूर हैं। कुत्ता, बिल्ली, बरसादत आदि पर भी बहुत-सी मसनवियाँ हैं। फ़ारसी जबानमें अर्दूके शायरोंका अंक तज- 'निकातुशुअरा' नामक अन्होंने स. १७५२ अ. में लिखा था जो बहुत मशहूर है। यक़ीनन् अर्दूके उन अनेगिने शायरोंमें मीरका शुमार किया जायगा जिनके नाम अर्दूकी तारीख़में पहले सफ़े पर लिखे जायेंगे।

मीर और सौदाका मुकाबला:—

जैसा कि हज़रत ख्वाजा बासतने फ़रमाया है, 'मीर साहबका कलाम 'आह' है और मिर्जाका 'वाह'। जो फ़र्क़ दोनोंकी ज़िन्दगियोंमें पाया जाता है वही अُنके कलाममें मौजूद है। मीरको कभी हँसनेका मौक़ा नहीं मिला और मिर्जाको रोनेकी कभी नहीं सूझी। हमेशा नाखुशी, रोना-धोना और दुनिया-से अुदास रहना मीरकी खासियत है। यही नाअुम्मेदी और यास (निराशा) अुनकी ग़ज़लोंकी जान है। अिन्हींसे अुनका कलाम जोरदार और पुरअसर हुआ है। और अिसीकी वज़हसे शायरी और ज़बानदानीमें वह अपना सानी ही रखते थे। अिसके बरख़िलाफ़ सौदा हमेशा खुश और अंश व अिशारतमें मस्त रहते थे जिससे अुनके कलाममें दिलबहलावके वास्ते काफ़ी सामान मौजूद था।

यह तो फ़र्क़ हो गया, मगर दोनोंमें अ़ेक मुताबिक़त (साम्य) भी है। वह यह कि दोनोंने दिलोजानसे अुर्दू ज़बानकी तरक्क़ीमें हाथ बँटाया। दोनों अपने ज़मानेमें बेनज़ीर (अनुपम) और लासानी थे, अितना ही नहीं बल्कि अुनके बाद भी अुनके सरीखा कोअ़ी नहीं हुआ। फ़ारसीकी मिलावटसे ज़बान में शीरीनी और जायका पैदा करनेका काम दोनोंने अ़ेकसा ही किया। असल में देखा जाय तो मीर और सौदाने ही ज़बानको अदबियतके तरूत पर बिठा दिया। मिर्जाकी काबलियत अिस आला दर्जेकी थी कि अुन्होंने जो चीज़ें ज़बानमें दाख़िल कीं वह फ़ौरन मक्कबूल हो गयीं। मीर और सौदाने अपने बाद आनेवालोंके वास्ते तरक्क़ीकी राहें खोल दीं। अिनके बारेमें ख्वाजा 'बासत' के यह दो शेर याद रखनेके काबिल हैं !

सिरहाने 'मीर' के आहिस्ता बोलो।

अभी टुक़ रोते रोते सो गया है ॥ १ ॥

'सौदा' की जो बालीं प' गया शोरे क़यामत।

खुदामें अदब बोले अभी अौख़ लगी है ॥ २ ॥

मीरके कलामका नमूना देखिये:—

अिन्तदाये अिश्क है, रोता है क्या ?
 आगे आगे देखिये, होता है क्या ?
 काफिले में सुबहके अिक शोर है ।
 यानी गाफिल हम चले सोता है क्या ?
 सब्ज होती ही नहीं यह सरजमीं ।
 तुल्मे ख्वाहिश दिलमें तू बोता है क्या ?
 यह निशाने अिश्क हैं जाते नहीं ।
 दाग छातीके अबस धोता है क्या ?
 गैरते यूसूफ है यह वज्रते अजीज ।
 'मीर' अिसको रायगाँ खोता है क्या ?

—*—

जो अिस शोरसे 'मीर' रोता रहेगा ।
 तो हमसाया काहेको सोता रहेगा ॥
 मैं वह रोनेवाला जहाँसे चला हूँ ।
 जिसे अब्र हर साल रोता रहेगा ॥
 मुझे काम रोनेसे अक्सर है नासिह ।
 तु कब तक मेरे मुँहको धोता रहेगा ॥
 बस अै गिरया आँखें तेरी क्या नहीं हैं ?
 जहाँको कहाँ तक डुबोता रहेगा ?
 मेरे दिलने वह नाला पैदा किया है ।
 जरसका भी जो होश खोता रहेगा ॥
 बस अै 'मीर' मिजगाँसे पूछ आँसुओं को ।
 तु कब तक ये मोती पिरोता रहेगा ? ॥

दर्द

(स. १७१७—१७८३ अी.) ख्वाजा भीर मियाँ साहब 'दर्द' दिल्लीके रहनेवाले थे । अठ्ठाशीस वर्षकी अुम्रमें वालिदके कहनेसे दरवेश बन गये । अिन्होंने बहुत छोटी अुम्रमें

शुहरत पायी । दुरांनी और मरहठोंके हमलोंके बावजूद दिल्लीको न छोड़नेवाले सिर्फ यही मशहूर बहादुर शायर थे । सब और तबक्कुल (श्रीश्वर पर भरोसा रखना) तथा सन्तोष और तसलीम अिनमें कूट कूटकर भरे हुए थे । तसव्वुफ़को अिनसे बेहतर किसीने नहीं कहा है । अिनकी तबियतमें आजादी, खुददारी और पाकीजगी अिस दर्जेकी थीं कि किसीकी मदह (स्तुति) या तारीफ़से अिन्होंने अपनी क़लमको आलूदा (लथपथ) नहीं किया ।

अिनकी ज़बान साफ़, सुगम, सुलझी हुआ और हर शख्सकी समझमें आसानीसे आनेवाली है । दर्द व असर अुसमें कूट कूटकर भरा हुआ है । अिनकी बहुत-सी तस्नीफें फ़ारसीमें हैं । मसलन् 'अिसरार अुस्सलाता', वारदाते दर्द', 'नालअे दर्द' 'शमअे महफ़िल' वगैरह । अुर्दूमें सिर्फ़ अेक छोटा-सा दीवान है जिसे अुर्दू शायरीके ताजका सबसे चमकीला हीरा समझना चाहिये । फ़ालतू या भरतीकी गज़लें अुसमें नहीं हैं । अश्लीलता और झिझो-रापन कहीं भी नहीं मिलता । हँसी उड़ाना और अिशक़ मिजाजीको बेहूदा समझते थे । अिन्होंने कोअी क़सीदा या हजो नहीं लिखी । यह शिष्टाचारके सख्त पाबन्द थे । सौदा अिनसे बड़ी अिज़्ज़त व मुहब्बतसे पेश आते थे ।

क़लामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाइये:—

जगसे आकर अिधर अुधर देखा, तू ही आया नज़र जिधर देखा ॥
जानसे हो गये बदन खाली, जिस तरफ़ तूने आँख भर देखा ॥
नाला फ़रयाद आह और जारी, आपसे जो हो सका सो कर देखा ॥
अुन लबोंने न की मसीहाअी, हमने सौ सौ तरहसे मर देखा ॥
ज़ोर आशिक़ मिजाज है कोअी, 'दर्द' को किस्सा मुख़्तसर देखा ॥
आतिशे अिशक़ जी जलाती है । यह वला जान ही पे आती है ।

—*—

तू है और सैरे बाग़ हर वक़्त । दाग़ है और मेरी छाती है ।
टुक़ ख़बर ले कि हर घड़ी हमको । अब जुदाअी बहुत सताती है ।
कुछ मुनासिब नहीं है क्या कहिये । जीमें जो कुछ कि अपने आती है ।

सोजः—

(स. १७१७-१७६८ जी.) सैयद मुहम्मद मीर 'सोज' दिल्लीके रहने वाले थे मगर मन्नाश (आजीविका) की तलाशमें अन्हें पहले फर्रुखाबाद और वहाँसे लखनऊ जाना पड़ा। जवानीमें रंगीं तबियतकी वजहसे अन्नका पैर फिसल गया था मगर बुढ़ापेमें यानी स. १७७७ जी. के करीब यह दरवेश बने। घुड़सवारी, शस्त्र चलाना, धनुर्विद्या आदि कलाओंमें यह अच्छी तरह पारंगत थे। शरीरसे बलिष्ठ, ताकतवर और दिलसे मिलनसार, विनोदप्रिय तथा विनीत थे। वह नवाब आसफुद्दौलाके काव्यगुरु थे।

अन्नका एक दीवान है जिसमें ज़्यादातर गज़लें, मसनवियाँ, रुबाअियाँ और मुखम्मस है। अन्नके कलाममें फ़ितरतीपन बहुत है क्योंकि अन्नकी कवित्व-शक्ति श्रीधरदत्त थी। जबान साफ़, मुहावरेदार, सादा और नचरल होनेसे उसमें प्रसादगुण बहुत है। असलिये वह आम व ख़ासमें काफ़ी मकबूल हो गये। शृंगार रस पर अन्नकी कविता बहुत ही अँचे दर्जेकी हो गयी है। अपने कलाममें सीधे सादे हिन्दी लफ़्ज़ बेधाख़्तगी (सहजतासे) बाँध गये हैं।

अन्नकी शहरतकी ख़ास वजह अन्नका शेर पढ़ना थी। अन्नकी आवाज़ मीठी होनेसे गज़लके लिये मौजू थी। अपने मतलबको जाहिर करनेमें वह आँख, नाक, हाथ, गर्दन वगैरह हर हिस्सेसे काम लेते और खुद मज़मूनकी सूरत बन जाते। यह अर्द्ध गज़लोंके शेख़सादी कहे जाते थे। कलामका नमूना देखियेः—

मेरा जान जाता है यारो बचालो ।
कलेजा में काँटा गड़ा है निकालो ॥
न भाओ मुझे ज़िन्दगानी न भाओ ।
मुझे मार डालो मुझे मार डालो ॥
खुदा के लिये मेरे अँ हसनशीनों ।
वो बाँका जो जाता है उसको बुला लो ॥

अगर वह खफा होके कुछ गालियाँ दे ।
 तो दम खा रहो कुछ न बोलो न चालो ॥
 न आवे अगर वह तुम्हारे कहे से ।
 तो मिन्नत करो धेरे धेरे मना लो ॥
 कहो एक बन्दा तुम्हारा मरे है ।
 उसे जाने कुन्दनसे चलकर बचा लो ॥
 जलों की बुरी आह होती है प्यारे ।
 तुम उस सोज़ की अपने हकमें दुआ लो ॥

हुआ दिलको मैं कहता कहता दिवाना ।
 पर उस बेखबरने कहा कुछ न माना ॥
 कोअी दम तो बैठे रहो पास मेरे ।
 मियाँ ! मैं भी चलता हूँ टुक रहके जाना ॥

हसन:—

(स. १७२५-१७८६ अ.।) नीर गुलाम हसन 'हसन' का जन्म दिल्लीमें हुआ था । ख्वाजा दर्दसे अिसलाह (संशोधन) लेते थे । अिन्होंने किसीको अपना शागिर्द नहीं बनाया, यहाँ तक कि अपने बेटे खलीक़को भी 'मुसहफ़ी' के सिपुर्द कर दिया था । अिनके पोते अनीस, मूनिस और अुन्स बहुत ही मशहूर थे जिन्होंने अपने दादाके नामको अच्छी तरह रोशन किया ।

अिनके दीवानमें सात हजार शेर हैं । यह अेक नामीगरामी शायर, जैयद (विशाल) फ़ाज़िल और मशहूर खुशानवीस (सुलेखक) थे । अरबी कम जानते थे पर फ़ारसीमें कमाल हासिल था । अिनकी मसनवियोंमेंसे अेक 'सिहरुलबयान' अुर्दू दुनियाकी बहुत ही मशहूर और आला मसनवी है जिसके मुक्ताबलेमें दयाशंकर कौल 'नसीम' की 'गुलज़ारे नसीम' को छोड़ दूसरी कोअी भी मसनवी नहीं टिक सकती । अिनका कलाम निहायत सादा, आशिक़ाना और पुरअसर है । अैसा मालूम होता है मानो मुँहसे फूल भड़ रहे हैं ।

कलामका नमूना देखिये:—

वह जब तक कि जुल्फें सँवारा किया । खड़ा अस प' मै जान वारा किया ।
अभी दिलको लेकर गया मेरे आह । वह चलता रहा मैं पुकारा किया ॥
किमारे मुहब्बतमें बाजी सदा । वह जीता किया मै हारा किया ।
किया कत्ल और जान-बख्शी भी की । हसन असने अेहसाँ दुबारा किया ॥

अिन शायरोंके अलावा अस जमानेमें और भी कअरी शायर हुअे लेकिन
चूँकि वह कसरतसे हैं और अुनमें कोअरी आस बात नहीं थी असलिये अुनका
जिक्र करना फ़िजूल है । फिर भी ख्वाजामीर 'असर', मीर खाँ 'कमतरीन',
मीर जाहक, मीर मेहदी हसन, 'फ़िराग' शेख कायमअली 'कायम', मिर्जा
फ़ाख़िर 'मिर्जा', बक्राअुल्ला खाँ 'फ़िदवी' वगैरह नाम याद रखने लायक हैं ।
वैसे तो अिनके कलाम बहुत अच्छे हैं मगर मीर और सौदाके सामने यह फीके
पड़ गये ।

अग्निशा, जुरअत और मसहफ़ी

तमहीद

अस अइदमें अर्दुकी नज़्म शाही दरबारके साथ बाबि-
स्ता (सम्बद्ध) हो गयी जिसका अमली नतीजा यह
हुआ कि वह रानीसे दासी बन गयी । अससे पहले भी तो शायरोंकी दरबारों
में कद्र होती थी, मगर अस् वक्तकी शायरी आज़ाद थी । पुराने ज़मानेके
शायरोंमें खुददारी और अजज़-आबरुका जो अग्निहा दर्जेका (बेहद)
खयाल था वह अस ज़मानेके शायरोंमें नहीं था । अस ज़मानेके शायरोंने
शायरीको धन कमानेका एक कामयाब तरीका बना दिया था जिससे उनका
मह मकसद बन गया कि किसी भी तरह हो अमीरों और रअसीसोंको खुश
किया जाय । यह तो सभी जानते हैं कि अस ज़मानेका लखनऊ कितना रंगी,
अशपरस्त और आरामतलब था । यहाँके बदअख़लाक (बदचलन) और
बदकार (दुराचारी) नवाबों और रअसीसोंकी मुलाज़िमतके वास्ते शायरोंमें
सरत रकाबत और गालीगलौज चलती थी । अससे पता चलता है कि वे
कितने गिर गये थे ।

असका नतीजा जवाल (अवनति) और नुज़ूल (पतन) के अलावा
और क्या हो सकता है ? अस वक्तके कलाममें पहलेकी जैसी अुम्दगी,
दृढ़ता या पाकीज़गी नहीं पायी जाती । खयाल भी आला दर्जेका नहीं है ।
आयन्दगी तरक्कीकी राहोंमें रुकावट पड़ गयी, रुहानियत और बलन्दपर-
दाज़ी गुम हो गयी और शायरी दुनियावी भगडों तक ही सीमित रह गयी ।
अब शायरोंके सामने 'माशूक' के तौरपर या तो खूबसूरत लौंडा रहने लगा
या बाज़ारी औरत । शहवाती (कामोत्तेजक) जज़्बे (कामनाअ) बेतकल्लुफ़ी
के साथ कसरतसे कवितामें आने लगे । और असी वक्त रेख़तीकी भी अज़ाद
हो गयी । रेख़तीके मानी हैं औरतोंकी खास बोलीमें की गयी शायरी । यह

गन्दे मजाकका श्रेक बदतरीन नमूना है। भद्दापन और बेहूदापनके सिवाय अ़ुसमें कुछ भी नहीं था। अ़िसी ज़मानेमें जानी, चिरकी, अ़क़सक आदि अ़ुर्दूके भेद परिहासके काव्य लिखनेवाले शायर गुज़रे हैं। यह कहना बज़ा होमा कि अ़िस समयके शायरोंने क़लम रखकर लाठी और पोंगे लिये और श्रेक दूसरेकी जान, अ़िज़ज़त व आबरूके पीछे पड़ गये। लेकिन यह बात याद रखनेके काबिल है कि यह मारा फूहड़पन ज़्यादाहतर लखनअ़ और अ़ुसके आस पास ही हुआ। खुद देहलीमें अ़िसका अ़सर ज़्यादा नहीं पाया जाता है। वहाँ पाकीज़गी और संजोदगी (गंभीरता) अ़ुसी तरह कायम रही जैसे कि पिछले अ़हदमें थीं।

ज़बानके लिहाज़से देखा जाय तो कुछ तसल्लीज़र हो जाती है। हालाँ-कि नित, टुक, अ़ँखड़ियाँ, जिन्होंके, पौन, अ़ीधर, शर्मातियाँ, वग़ैरह लफ़्ज़ अ़ब भी चलते रहे फिर भी बहुतसे पुराने शब्द अ़ब ज़बानसे हट गये। फ़ारसीका अ़सर बढ़ता जाता था, मगर साथ साथ हिन्दीके अ़च्छे अ़च्छे शब्दोंका भी जान-बूझकर बहिष्कार नहीं किया गया। मसहफी और ज़ुरअ़त तो पुरानी लकीरके फ़कीर थे पर अ़िन्शाने अ़ुर्दूका फैलाव और तरक्कीके वास्ते बहुत-सी नयी-नयी तरकीबें अ़ीजाद कीं। अ़िन्शा ज़ैसी आला दिमाग़ हस्ती (व्यक्ति) की वजहसे यह अ़हद अ़ुर्दूकी तारीख़में श्रेक खास अ़ोहदा रखता है।

अ़िन्शा :—

(मृत्यु-स. १८१७ अ़ी. में) सैयद अ़िशाअ़ल्ला ख़ाँ 'अ़िन्शा' का जन्म मुर्शिदाबादमें हुआ था।

अ़िनके वालिद माशाअ़ल्ला ख़ाँ 'मसदर' श्रेक नामी शायर थे। जो सल्तनतके ज़वालके ज़मानेमें दिल्लीसे मुर्शिदाबाद चले गये थे जहाँ अ़िन्शाकी पैदाअ़िश हुआ। अ़िनके वलादत (जन्म) की तारीख़ मालूम नहीं है। अ़िन्हें बचपनमें ही शेर व शायरीका शौक़ हो गया। कुछ रोज़तक अपने पितासे ही अ़िसलाह लेते रहे। वालिदकी मौतके बाद किसीको अ़ुस्ताद नहीं बनाया। ज़वानीमें मुर्शिदाबादसे दिल्ली चले आये। अ़िस वज़त दिल्लीके तख़्तपर शाहअ़लम

ये जो शायरोंके बड़े क़दरों थे और खुद भी 'आफ़ताब' तख़ल्लुस करके शेर कहा करते थे । अन्होंने अन्हशाकी बहुत क़द व अज़ज़त की मगर उनका ख़जाना ख़ाली था, अिसलिये अन्हशाको लखनऊकी राह देखनी पड़ी । लखनऊ जाकर अन्होंने मिर्जा सुलेमान शिकोहकी मुसाहिबत अख़्तियार की । थोड़े असेंके बाद वे वहाँसे नवाब सआदत अली ख़ाँके दरबारमें पहुँच गये । हँसी, मज़ाक़ और क़िस्सा-क़हानियोंसे नवाबके दिलबहलावका काम करने लगे । अिसी हँसी-मज़ाक़में वह कुछ अैसे लफ़्ज़ बोल गये जिससे नवाब मजकूर सख़्त नाराज़ हो गये और अन्हें दरबारसे हटा दिया । अिससे वह आग़िरी अुम्रमें सूखी रोंटीको भी मुहताज़ हो गये और शायद अिसीलिये पागल बन गये ।

अन्हशाको जबानपर बड़ी कुदरत हासिल थी । और अिसीके जोरपर वह जबानकी अिसलाह और तरक्क़ीका सौदाका काम अचछी तरह जारी रख सके । मज़ाक़ व ज़राफ़त (हास्य) में वह सौदाकी बराबरीके थे । चाहे जिस क़िस्मका मजमूत हो, वह अुसे अपने रंगमें ढालकर ही रहते । अपने अिल्म व फ़जलके लिये वह बहुत मशहूर थे । अपने दावेके लिये वह अितने और अैसे ज़बर्दस्त सबूत पेश करते थे कि हरीफ़ (विरोधी) देखते ही रह जाते । वह निहायत ज़हीन और खुशामिज़ाज़ शख्स थे । फ़ारसी और अरबी ही नहीं बल्कि दूसरी ज़बानोंके भी ज़बर्दस्त फ़ाज़िल थे । अिनकी शैली बहुत मुश्किल थी । अिनकी आला काबिलियत और अीज़ादकी कूबत देखकर अमीर खुसरो की याद आती है । अिनमें ख़ामियाँ भी कुछ कम नहीं थीं । सबसे बड़ी ख़राबी अुनमें यह थी कि अन्हें मुनासिबतका सही अन्दाज़ न था जिससे आख़िरी अुम्रमें नवाबके साथ झगड़ा हो गया और ज़िन्दगीकी शाम हसरतके बादलोंसे अुदास हो गयी । काश, अन्हशा शायर न होकर अ़ेक फ़िलसुफ़ होते । अुनके बारेमें जो यह कहा जाता है कि 'अन्हशाके अिल्मवफ़जलको अुनकी शायरीने खोया और अुनकी शायरीको नवाब सआदत अली ख़ाँकी दरबार-दारीने डुबोया' बिल्कुल सच है । अिनकी प्रतिभापर अगर मुसाहिबतका अंकुश न चलता तो शायद, नहीं यक़ीनन्, हम अन्हशाको अुर्दू शायरीका सबसे दिलक़श और रोशन तारा पाते ।

अिनकी तसनीफे काफ़ी तादादमें हैं । अिक कुल्लियात है जिसमें अुर्दू, फ़ारसी और रेख़तीके दीवान हैं । अिसमें कहीं कहीं शायरीके क़वायदकी ख़िलाफ़वरज़ी भी हो गयी है, जिसकी वजह अुनकी तबियतकी मस्ती ही मालूम होती है । अिनकी बहुत-सी मसनवियाँ कुल्लियातमें मिलती हैं । ‘मसनवी बे नुक्त’ ‘शिकारनामा’ वगैरह मसनवियाँ ज़्यादा मशहूर हैं । अिन्शाकी हज़ोज़ें बहुत ही तीखी, तीर व नशतरका काम करने वाली होती हैं । अपने ज़मानेमें वह अिन हज़ोज़ोंके लिये ही मशहूर थे । अिन्होंने अ़क़ किताब ‘रानी केतकी की कहानी’ ठेठ हिन्दी ज़बानमें लिखी है जिसने अुन्हें हिन्दी नग़ (गद्य) के निर्माताओंमें अ़चा स्थान बख़्शा है । अिस कहानीमें क़सम खाकर अ़क़ भी अुर्दू शब्दको नहीं आने दिया है ।

अिन्शाकी सबसे महत्त्वकी किताब है, ‘दरियाअ़े लताफ़त’ । यह अुर्दूकी पहली क़वायद है जो हिन्दुस्तानी आदमीने लिखी है । अिसकी ज़बान फ़ारसी है और अिसकी तसनीफ़में ‘मिर्ज़ा क़तील’ भी शरीक थे । क़दीम अुर्दू ग्रामर की हैसियतसे यह निहायत क़ामती चीज़ है । अिसमें मतरूक शब्दोंको देकर जो लफ़ज़ रिवाजमें थे अुनको बयान किया है । दूसरी ज़बानोंका अुर्दू पर जो असर पड़ा है अुसका विवेचन करके अुर्दू बोलनेवालोंकी मुख़्तलिफ़ ज़बानोंके नमूने भी दिये हैं । आज भी यह किताब पढ़नेके काबिल है । हालाँकि यह क़वायदकी किताब है फिर भी अिसमें जगह जगह पर मज़ाक़ व ज़राफ़तको जगह मिल ही गयी है जो अुनका जाती जौहर था ।

बहुत बड़े फ़ाज़िल होनेकी वजहसे अिन्शाकी ज़बान चुस्त, साफ़-सुथरी, दिलक़श, मगर मुश्किल और पेचीदा थी । क़लामका नमूना देखिए:—

मुझे छेड़नेको साकीने दिया जो ज़ाम अुलटा ।

तो किया बहक के मैंने अ़से अ़िक सलाम अुलटा ॥

बहुँ अ़स गलीसे क़्योंकर कि वहाँ तो मेरे दिलको ।

कोअ़ी खींचता है अ़ैसा कि पड़े हैं ग़ाम अ़ुलटा ॥

नहीं अब जो देते बोसा तो सलाम क़्यों लिया था ।

मुझे आप फेर दीजिये वह मेरा सलाम अ़ुलटा ॥

मुझे क़्यों न मार डाले तेरी जुल्फ़ अुलटके काफ़िर ।

कि सिखा रक्खा है तूने असे लफ्जे राम अलटा ॥
 निरे सीधेसादे हम तो भले आदमी हैं यारो ।
 हमें कज जो समझे सो खुद बल्द अल् हराम अलटा
 तू जो बातोंमें रुकेगा तो यह जानूँगा कि समझा ।
 मेरे जान व दिलके मालिकने मेरा कलाम अलटा ॥
 फ़क़त अिस लिफ़ाफ़े पे है कि ख़त आशनाको पहुँचा ।
 तो लिखा है अुसने **अिन्शा** यह तेरा ही नाम अलटा ॥

कमर बाँधे हुआ चलनेको याँ सब यार बैठे हैं ।
 बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं ॥
 न छेड़ो अं निकहत बादे बहारी राह लग अपनी ।
 तुम्हे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं ॥
 तसव्वुर अर्शपर है और सर है पाये साक़ी पर ।
 गर्ज कुछ और धुनमें अिस घड़ी मैख़्बार बैठे हैं ॥
 यह अपनी चाल है अुफ़तादगीसे अब कि पहरों तक ।
 नजर आया जहाँपर सायासे दीवार बैठे हैं ॥
 भला गर्दिश क़लक़की चैन देती है किसे **अिन्शा** ।
 ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ॥

जुरअत :-

मृत्यु-- (स. १८१० अी.) अिनका असली नाम यहिया अमान था पर यह शेख़ कलंदर बख़्शके नामसे मशहूर थे और 'जुरअत' तख़ल्लुस करते थे । यह मिर्जा जाफ़रअली 'हसरत' के शागिर्द थे । नुज़ूम (ज्योतिषशास्त्र) मौसीक़ी (गानविद्या) और सितार बजानेसे भी अच्छी तरह वाकिफ़ थे । यह फ़ैजाबाद, बरेली वगैरह होते हुआ स. १८०० अी. में लखनऊ पहुँचे और मिर्जा सुलेमान शिकोहके मुसाहिब बन गये । परदानशीं हसीनोंको देखनेके चस्केसे वह झूठमूठके अन्धे बन गये थे मगर अेक दिन भंडाफोड़ हो ही गया । आख़िरी अुम्रमें सचमुच अन्धे बन गये ।

यह किसी भी भाषासे पूरी वाक्किफ़ियन नहीं रखते थे। अरबी-फ़ारसीकी तरफ़ तो अन्होंने ध्यान नहीं दिया था। लेकिन अिनकी कवित्वशक्ति और स्वानुभव अितने ज़बर्दस्त थे कि सिर्फ़ अुर्दूमें ही अन्होंने जो कुछ लिखा दिल-आवेज़ और आममें मक़बूल हो गया। यह मसख़रे थे जिससे चारों ओरसे अिनकी माँग रहती थी। अिनका अिशक़ बाज़ारी और अदना दर्जेका था। अुसमें अश्लीलताकी मात्रा भी काफ़ी पायी जाती है। अिसलिये निम्न श्रेणीके लोगोंमें अिनकी कविता बहुत पसंद की जाती थी।

अिनका अेक दीवान अुर्दूका और दो मसनवियाँ मिलती हैं जिनमेंसे 'हुस्नोअिशक़' बहुत मशहूर है। अिस मसनवीमें ख़्वाजा हसन और बख़्शी गणिकाकी प्रेम-कहानी है। अिनकी ज़बान साफ़, सादा, लुत्फ़से भरी हुआ मगर कुछ ढीली-ढाली-सी है। कलामका नमूना देखिये :—

लग जा गਢੇसे ताब अब अै नाज़नीं नहीं ।
 है, है, खुदाके वास्ते मतकर नहीं नहीं ॥
 पहलूमें क्या कहें ज़िगर व दिलका क्या है रंग ।
 किस रोज़ अशके खूनीसे तर आस्तीं नहीं ॥
 फुरसत जो पाके कहिये कभू ददे दिल सो हाय ।
 वह बद गुमाँ कहे है कि हमको यकीं नहीं ॥
 आतिश-सी फक रही है मेरे तनबदनमें आह ।
 जबसे कि रुबरू वह रुखे आतिशीं नहीं ॥
 अुसबिन जहाँ कुछ नज़र आता है और ही ।
 गोया वो आसमाँ नहीं वो ज़मीं नहीं ॥
 हैरत है मुज़को क्योंकि वो 'ज़ुरअत' है चैनसे ।
 जिस बिन करार जी को हमारे कहीं नहीं ॥

मसहफ़ी

स, १७४८-१८२४ अी. शेख़ गुलाम हमदानी 'मसहफ़ी' अमरोहा, ज़िला मुरादाबादके रहनेवाले थे। लेकिन मुआशकी तलाशमें स. १७७६ अी. में दिल्ली आये। यहाँ बारह बरस तक

बड़े आरामसे कटी, मगर बादमें सल्तनतके दूट जानेसे लखनऊ चले गये । वहाँ मिर्जा सुलेमान शिकोहके दरबारमें रहकर अिन्शासे चोंचें चलाया करते थे।

यह झुर्द और फ़ारसीके अच्छे शायर थे । यह अपनी ग़ज़लें बेच दिया करते थे जिससे अच्छी-अच्छी ग़ज़लें बिक जाती थीं और अिनके पास रही बच जातीं । यह बहुत जल्दी शेर बनाते थे मानो किसी किताबका तर्जुमा कर रहे हैं । अिनके आठ दीवान अुर्दके और चार फ़ारसीके मिलते हैं, जिनमें हजारों ग़ज़लें, रुबायियाँ, क़सीदे वगैरह मौजूद हैं । झुर्दके शायरोंका अ़ेक तज़किरा भी अिन्होंने फ़ारसी ज़बानमें लिखा है । कुछ मसनवियाँ भी मिलती हैं । यह किताबें बहुत पढ़ा करते और अुन्हें याद भी रखते थे । नज़्मकी क़वायदके निहायत सख्त पाबन्द थे । अिनकी ग़ज़लें बिलकुल मामूली मालूम होती हैं । अ़ेक शायर की हैसियतसे अिनकी अुतनी कीमत नहीं जितनी कि अ़ेक आला अुस्तादकी हैसियतसे है । अिनके शागिदोंमें आतिश, ज़मीर, अ़ैशी, ख़लीक़, तनहा वगैरह बहुत ही मशहूर हैं ।

हालाँकि यह रहते थे अ़िशा और ज़ुरअतके ज़मानेमें मगर अिनकी ज़बान थी मीर और सौदाके ज़मानेकी । यानी क़वायदकी पाबंदी तो थी मगर बफ़ाअी और सादगीका ज़्यादा ख़याल नहीं था । अिनकी निज़ी कोअी भी ख़ुसूसियत नहीं है । क़लामका नमूना मुलाहिज़ा हो :—

दिन जवानीके गये मौसिमे पीरी आया ।

अब रू ख़्वाब है, अब वज़ते हक़ीरी आया ॥

ताबोताक़त रहे क्या ख़ाक़ कि अ़ैज़ाके तअ़ी ।

हाकिमे जोफ़से फ़रमाने तगीरी आया ॥

सबके नाला तो बुलबुलने पढ़ा मुझसे वले ।

न अुसे क़ायद अ़े ताज्ज़ा सफ़ीरी आया ॥

दर्द पढ़ने जो अुठा सुबहको सबसे पहले ।

मक़तबे अ़िश्क़में होनेको वह मेरी आया ॥

चश्मे कमसे न नज़र 'मसहफ़ी' ख़स्ता प' कर ।

वह अगर आया तो मजलिसमें नज़ीरी आया ॥

अ़िस अहदके दूसरे मशहूर शायर यह हैं:—सआदत यार ख़ौ, 'रंभी'

मीर यार अली खॉ, 'जान साहब', शाह आलम सानी (दूसरा) 'आफ़-
ताब', मिर्जा मुलेमान शिकोह 'मुलेमान' (आफ़ताबके साहब जादे)
बहादुरशाह सानी 'जफ़र', 'कायम', 'मिन्नत', 'ममनून', 'हसरत',
'कुदरत', 'बेदार', 'बयान', 'रासिख', 'हिदायत' वगैरह अिनमें से
'रंगी' और 'जान साहब' खास रेख्तीके लिये मशहूर हैं । रेख्ती अश्ली-
लता, भद्दा परिहास और विषय वासनाके रंगमें रँगी हुआ कविता है । अिस
जमानेकी बिगड़ी हुआी सोसाअिटी (सभाज) का वह बदतरीन आअिना है ।
अिसका प्रचार खूब हो गया था मगर खुशकिस्मतीसे वह जल्द ही मर गयी ।



अेक हिन्दुस्तानी शायर

नज़ीर (अकबराबादी)

स. १७५०-१८३० आ. वली मुहम्मद 'नज़ीर' अकबराबाद (आगरा) के रहनेवाले थे । लड़कों-

को अर्दू और फ़ारसी पढ़ाकर उसीसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे । अर्दूकी रस्मी शायरीसे अिनका कोअी ख़ास ताल्लुक नहीं है । बल्कि यँू कहें तो नामुनासिब न होगा कि अर्दू ज़बानके दीगर (दूसरे) शायरोंमें और अिनमें ज़मीन व आसमानका फ़र्क है । हालाँकि नज़ीरकी शायरी अस वक्क़के शाही दरबारों और अमीरोंकी महफ़िलोंमें ज़्यादा अिज्जतकी नज़रसे नहीं देखी गयी फिर भी आम लोगोंके दिलमें असने घर कर लिया था और आज भी वह अुतने ही चावसे देहातों और शहरोंमें पढ़ी जाती हैं । अर्दूके किसी भी दूसरे शायरकी बनिस्बत नज़ीरको अवाम (जनता) की मक़बूलियत ज़्यादा हासिल हुआी ।

अिन्होंने सौदासे लेकर नासिख तकका ज़माना देखा था, लेकिन अिनका अक्सर कलाम आजकलका मालूम होत! है । यह फ़ारसी अच्छी जानते थे और अरबीसे भी कुछ कुछ वाकिफ़ थे मगर अिनके कलामपर अरबी-फ़ारसी-पनका असर बहुत कम दिख़ाअी देता है । तबीयतमें आज़ाद-पसन्दी, बेफ़िक्री और सब्र कूट कूटकर भरे हुआे थे । असलिये नवाबके बुलानेपर भी यह आगरा छोड़कर लखनअू नहीं गये । अिन्होंने न किसीकी हज़ो लिखी है न कसीदा ।

कहते हैं कि जवानीमें यह रंगीं-मिज़ाज़ थे और अिस्क़ आशिकीका भी ज़ौक रखते थे । अस ज़मानेके अुनके कलाममें भदेपनका ज़हर मिला हुआ है । लेकिन जब बढ़ती उम्रके साथ यह सूफ़ियाना रंगमें मस्त होने लगे तब

अनका कलाम भी निहायत आला, कद्र करनेके काबिल और पुर-असर होता गया। अन्होंने तकरीबन् दो लाख शेर लिखे होंगे। मगर इस वक्त सिर्फ छः हजारके करीब ही मिलते हैं, क्योंकि खुद उनको अपने कलामको महफूज रखनेकी परवाह न थी।

अनके कुल्लियातसे अगर मामूली शेर निकाल दिये जाँय तो नज़ारका शुमार बड़े बड़े फ़िलमुफ़ों और नासिह शायरोंमें होगा। उनकी मिसालें आला और दिलकश होती हैं। इस फ़नमें तो वह शेख सादीका मुकाबला करते हैं। अनका कलाम निहायत साफ और सलीस (सुगम) है। उसपर तस-व्वुफ़ का बहुत बड़ा गहरा असर पड़ा है। उनकी जानकारी बड़ी वसीअ है, उनका लफ़्ज़ोंका खजाना कभी खूटता नहीं और बयानकी सफ़ाई तो बेहद दिलकश है। खयाल, ज़बान और मज़मून अिनपर यहाँका-अिस मुल्कका रंग अ़ैसा जम गया है कि अुन्हें खालिस हिन्दोस्तानीके शायरोंके अुस्ताद कहना बजा होगा। अुन्होंने ज़बानकी जो ख़िदमतकी है वह तारीफ़ करनेके काबिल है अ़ैसे लफ़्ज़ोंको जिन्हें दूसरे शायर अदना और बाज़ारी ममभते थे अिन्होंने अपने कलाममें जगह दे दी और दुनियाको दिखलाया कि अिनमें वह वह खूबियाँ छिपी हुअी हैं जिन्हें अपरी तौरपर देखनेवाली निगाहें नहीं देख सकतीं। अिनका बड़ा कमाल यह है कि वह जनताके खयालों और भावोंको खुद उसीकी बोल-चालकी ज़बानमें जाहिर करते हैं। नकलीपन या बनावट मुतलक नहीं है। अिनके कलामसे यह साफ़ जाहिर होता है कि यह हालके जमानेके पेशरौ (मार्ग दर्शक) बल्कि अ़ीजाद करनेवाले थे। अिनकी हँसी मजाकसे किसीको चोट नहीं पहुँचती। नज़ीरमें सौदाका जोर मीरकी बलन्द पर-दाज़ी, अिन्शाकी ज़राफ़त या अनीस व दर्बीरका जोशवख़रोश नहीं है मगर यह सारी सिफ़तें अक हदतक अुनमें ज़रूर पायी जाती हैं :

भले आदमी थे, अिसवास्ते हर चीज़में अच्छाअ़ी ही देखते थे। किसी तरहका तास्सुब (पक्षपात) या घमंड अुनके मिज़ाजमें तनिक भी नहीं था अिसलिये हिन्दू मुसलमान सभी अुनको मानते और अुनसे मुहब्बत रखते थे। आज़भी वह शाह नज़ीरके नामसे पहचाने जाते हैं और बड़ी अिज़्ज़तसे याद किये जाते हैं। :

अनकी अक मशहूर कविताका कुछ हिस्सा हम यहां देते हैं जिससे
अनके भावों और भाषाका पता चलेगा ।

टुक हिंस व हवाको छोड़ मियां मत देस विदेस फिर मारा ।

कज्जाक अजलका दूटे है दिन रात बजाकर नकारा ॥

क्या बधिया भैसा बैल सुतुर क्या गोनें पल्ला सर मारा ।

क्या गेहूं चाबल मोठ मटर क्या आग धुवा औ अंगारा ॥

सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंगारा ।

तू बधिया लादे बैल भरे जो पूरब पच्छिम जावेगा ।

क्या सूद बढाकर लावेगा या दूटा घाटा पावेगा !

कज्जाक अजलका रस्तेमें जब भाला-मार गिरावेगा ।

धन दौलत नानी पोता क्या अक कुन्बा काम न आवेगा ॥

सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंगारा ॥



दिल्लीसे लखनऊ

नासिख और आतिशका जमाना

तमहीदः— मुगल सल्तनतके आखिरी मालिक बहुत कमजोर हो गये थे, दरबारमें आपसी झगड़े बेहद बढ़ गये थे और बादशाहकी बची खुची अिज्जत व रोबको मराठों और जाटोंके जबरदस्त हमलोंने खाकमें मिला दिया था। शाही खजाना कभीका खाली हो चुका था, जिसका नतीजा यह हुआ कि अच्छे अच्छे शायर दिल्ली छोड़कर मआशकी तलाशमें बाहर निकले। हालाँकि मीर, सौदा, अिन्शा, मसहफ़ी, जुरअत वगैरह शायरोंकी जिन्दगीके आखिरी दिन लखनऊमें कटे थे फिर भी उन्हें 'लखनवी' न कहकर 'देहलवी' ही कहा जाता है।

दिल्लीके शायरोंने जब देखा कि लखनऊके लोगोंमें कद्र व शनासका दर्दिला दिल है तो वह और कहीं जानेके भंभटमें न पड़कर सीधे लखनऊ पहुँचे। अिससे दिल्लीका नुकसान तो जरूर हुआ मगर साथ ही लखनऊके लोगोंने उन्हें हाथोंहाथ ले लिया और अुनके साथ निहायत अिखलाक(सभ्यता) और मुहब्बतसे पेश आये। सल्तनतकी तरफसे शायरोंको अिनाम-अिकराम और जागीरें मिलने लगीं जिसका नतीजा शायरीके हकमें बुरा हो गया। यानी अिस जमानेके शायर अपने मालिकोंकी अैश व अिशारतके गुलाम बन गये और शायरी महज रस्मी और तकल्लुफसे भरी हुआ रह गयी। मसलन् मीर और सौदाकी आज्ञाद तबियतने जो काम करके दिखलाया वह दरबार-दारीके असरके नीचे दबे हुआ अिन्शा और मसहफ़ीसे न हो सका, हालाँकि दोनोंका दर्जा अेक ही सा था।

लखनऊ और देहलीकी शायरीकी तर्जमें भी काफ़ी फ़र्क आ गया। यूँ देखा जाय तो लखनऊको रोशनी तो देहलीसे ही मिली थी लेकिन देहलीकी बनिस्बत ज्यादा नयी नयी राहें निकालकर लखनऊके शायरोंने अपनी अ़क अलग ही तर्ज निकाली और उसे तकमील तक पहुँचा दिया।

अ़िस नयी तर्जके पेशवा शेख अ़िमामबख़्श 'नासिख' थे। लखनऊकी तर्जकी यह ख़ुसूसियत थी कि अ़ुसने अपनी तमाम तवज्जुह शेरके जाहिरी हुस्नपर तथा लफ़्ज़ोंकी रिआयतपर सफ़र कर दी। दिल्लीमें भावोंकी तसवीर सादा और पुरअसर शब्दोंमें खींची जाती थी। लेकिन लखनऊकी शायरीमें बलन्द खयाली और भावोंकी सही सही तसवीरें नहीं मिलतीं। लफ़्ज़ोंकी कुर्बानगाहपर दर्द, अ़सर, दिलके ज़ज्बे, सादगी, अ़ुम्दगी वग़ैरह साकी सिफ़तों को कुर्बान किया गया। लेकिन अ़िस कमीको ज़बानकी ख़ुबसूरतीने पूरा कर दिया। लखनऊकी शायरी नज़र और कानको अच्छी लगती है पर वह दिल-क़श नहीं मालूम होती। वह दिमाग़को अपनी तरफ़ खींचती है मगर अ़ुससे दिलपर किसी तरहका अ़सर नहीं पड़ता। दिल्लीमें छोटी छोटी बहरोंका अ़िस्तेमाल ज़्यादा होता था, मगर लखनऊमें लम्बी-चौड़ी बहरें पसन्द की जाने लगीं। लखनऊका ज़माना लफ़्ज़ोंकी तहर्काक़ और रिआयतका ज़माना समझना चाहिये। दिल्लीके बहुतसे लफ़्ज़ यहाँ आकर ख़ारिज हो गये। तज़-कीर व तानीस (लिंग) में भी फ़र्क आ गया—यानी जिस लफ़्ज़को दिल्ली में मुअ़न्नस [स्त्रीलिंग] समझा जाता था अ़ुसे लखनऊमें मुज़क्कर [पुर्लिंग] मानने लगे। यह भगड़ा अब तक चला आ रहा है।

नासिख:-

(स १=३० अी. में मृत्यु) शेख अ़िमामबख़्श 'नासिख' लखनऊ-के रहनेवाले थे। ख़ुदाबख़्श नामके अ़ेक ताज़ीरने अ़िन्हें गोद लिया था जिसकी मौतके बाद अ़िनको बहुत बड़ी जायदाद मिल गयी। कहते हैं कि यह बचपनमें मीर तक्वी 'मीर' के पास अपनी कविता ले गये थे पर अ़ुन्होंने अ़िसलाह नहीं दी। तबसे वह अपनी

कविता खुद ही देखा करते थे । यह किसीके शागिर्द नहीं बने मगर अिनको तो सैकड़ों शागिर्द मिल गये । अिनहोंने किसीकी मुलाजिमत नहीं की । न कसीदा कहा न हजो । ज़्यादातर तारीख ही कहा करते थे और सो भी बुखार जैसी छोटी छोटी बातों पर । (तारीख अेक शायरीकी क्रिस्म है । अुर्दूमें हरेक अक्षरकी कुछ क्रीमत होती है जैसे अलिफ=१, बे=२, पे=२) वगैरह । अब अगर कोअी महत्त्वकी घटना होती है तो अुसे अिस तरह छंदोबद्ध करते हैं जिससे अुस छंदमें आनेवाले अक्षरोंसे पूरी तरह मतलब निकले और अुसके अक्षर गिननेसे अुस घटनाकी तिथि, महीना, सम्बत् वगैरह मालूम हों । जैसे—कुनम शुके खुदा=स. १२३५ हिजरी ।)

यह बार-बार लखनअू छोड़कर बाहर चले जाते थे मगर लखनअूसे अितनी मुहब्बत हो गयी थी कि फिर वापस आ जाते । अिनहोंने तीन दीवान यादगार छोड़े हैं जिनमें 'दफ्तरे परेशाँ' बहुत मशहूर है । अिसमें आला दर्जेकी गज़लें, कितआत, तारीखें व रुबाअियाँ काफ़ी तादादमें शामिल हैं । अिनहोंने अेक मसनवी 'नज़्मे सिराज' भी लिखी है ।

शेख नासिख तीन खास बातोंके लिये मशहूर हैं । अव्वल तो अुनके कलामकी ताक़त बहुत अूँचे दर्जेकी थी । दूसरे, अुनकी तर्ज बिलकुल अुनोखी थी जिसकी अीजाद करनेवाले और जिसे चलानेवाले वह खुद ही थे । और तीसरे, अुनके शागिर्दोंकी तादाद बहुत बड़ी थी । आज भी अुनका कलाम सनद माना जाता है । लफ़्ज़ोंकी तलाश और छानबीनपर अिनहोंने जरूरतसे ज़्यादा तवज्जुह की है । अिसका नतीजा यह हुआ कि अुनका कलाम दिल-चस्पी और असरसे खाली हुआ हालाँकि वह जाहिरी हुस्नसे अच्छी तरह आरास्ता है । अिनकी गज़लें शानदार लफ़्ज़ और तरह तरहकी तशबीहों (अुपमाओं) के गुलदस्ते हैं मगर वह कागज़ी मालूम होते हैं अुनमें भाव और असरकी बिलकुल कमी है । अिनकी तशबीहें व तमसीलें अजीब और बिलकुल नयी होती हैं ! जाहिरी हुस्नपर ज़्यादा ध्यान देनेसे यह नतीजा हुआ कि लफ़्ज़ोंकी मुनासिबतकी बहुतायतमें शेख के मज़मूनका खात्मा हो गया अिनके कलामको हकीकी तसव्वुफ़ कहीं छू तक नहीं गया है । अिनकी हँसी भी बनावटी मालूम होती है । अिनकी बातें दिमागपर तो काफ़ी असर डालती

हैं मगर उनमें किसी अमुदा खयालका पता न होनेसे दिल नहीं फड़कता । बनावटीपन, तकल्लुफ़, फ़ारसी तशबीहों और बड़े बड़े अरबी लफ्जोंकी उनके कलाममें भरमार है । अन्होंने बहुतसे अच्छे अच्छे पुराने, देहाती और ठेठ हिन्दीके शब्दों और मुहावरोंका बायकाट कर दिया जिससे उनकी ज़बानमें वह मीठास, वह चुलबुलापन नहीं पाया जाता जो उनसे पहलेके शायरोंमें दिखाई देता है । पुरानी तर्जको अन्होंने मिटा दिया । 'रेखते' के बदले अन्होंने 'उर्दू' शब्द चलाया, जो हमेशाके लिये चल पड़ा । लेकिन दिल्लीमें यह लफ्ज देरीसे जारी हुआ ।

यह कभी कभी अिकहरी रदीफ़ें (तुक) बांधते थे जैसे, का, को, है, नहँ वगैरह । क्रियाओंमें भी परिवर्तन कर दिया । आये है जाये है के बदले आता है जाता है वगैरह लिखते थे । आअियां, दिखाअियां वगैरह प्रयोग छोड़ दिये । नामहज्जब (असभ्य) और भदे लफ्जोंको खारिज कर दिया । तजकीर बतानीसके सख्त कवायद बना डाले जिससे दिल्ली और लखनऊकी उर्दूमें फर्क आ गया । अन्होंने गज़लके दायरेको बड़ा दिया जिससे अशक़ व अशक़को छोड़ कर और भी बहुतसे मजमून उसमें आने लगे । लफ्जोंका सही अिस्तमाल भी मुक़रर कर दिया ।

नासिखकी यह एक खुसूसियत समझनी चाहिये कि अन्होंने जो कवायद मुक़रर की उसपर वह खुद भी सख्तीसे चले और अपने शागिदोंको भी उनपर अमल करनेपर मजबूर किया । अिनके शागिद तो बहुतसे हैं । लेकिन उनमें भी 'वज़ीर' 'बर्क' 'रशक़' 'मुनीर' वगैरह बहुतसे मशहूर हैं । नासिख अपने कलामकी बनिस्बत अपनी अुस्तादीके वास्ते ज्यादा मशहूर हैं । कलामका नमूना देखिये:—

पोंछता अशक़ अगर गोशअे दामाँ होता ।

चाक करता मैं जुनूँमें जो गरेबाँ होता ॥

अपने होठोंसे जो अिकबार लगा लेता वह ।

है यकीँ सागिरे मैं चश्मअे हैवाँ होता ॥

हूँ वह वहशी कि अगर दश्तमें फिरता शबको ।

आगे मशअालची वही गोले बयाबाँ होता ॥

की मकाफात शबे वस्ल खुदाने वरना ।
 किसलिए मुझें यह अजाबे शबे हिजराँ होता ॥
 औ बुतो ! होती अगर मेहरो मुहब्बत तुममें ।
 कोअ्री काफिर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता ॥
 हसरते दिल नहीं देता है निकलने नासिख ।
 हाथ शल्ल होते मयस्सर जो गरेबाँ होता ॥

आतिश

मृत्यु स. १८४७ अ. ख्वाजा हैदर अली 'आतिश' के वालिद
 दिल्लीके रहनेवाले थे मगर सल्तनत की

तबाहीके वक़्त वह दिल्ली छोड़कर फैजाबाद चले गये। वहीं आतिशकी बला-
 दत हुयी। मसहफ़ी और अंशके मुकाबलोंको देख और सुनकर अिनको भी
 शेर व सखुनका शौक पैदा हुआ और यह मसहफ़ीके शागिर्द बन गये।
 अिनकी ज़िन्दगीकी तरह अिनका कलाम भी सादा और तकल्लुक व तमन्नासे
 खाली है। अिनके मिज़ाजमें वजादारी [तरहदारी] और खुददारी कूट कूट
 कर भरी हुआ थीं। अिन्होंने न किमीकी खुशामद की और न दरबार भी गये।

अिनके कलामकी यह खुस्सियत है कि वह नचरल है। उसमें मामूली
 व अदना खयाल या बेजा और फ़िज़ूल तमसीलें नहीं मिलतीं। अिनके
 तराशे हुअे लफ़्ज़ आबदार मोतियोंकी तरह खिल उठते हैं। अिनके शेरोंमें
 अलबत्ता मीरका दर्द व तड़प और ग़ालिबका अिख़तशाअ (मौलिकता) नहीं
 है मगर फिर भी मीर और ग़ालिबके बाद ग़ज़लगोअीमें आतिशका ही नम्बर
 आता है। यह अपने भावोंको निहायत मुअ्यस्सर और दिलक़श लफ़्ज़ोंमें अदा
 करते हैं। अिनकी जबान मज़ेदार और रोज़मर्राकी बोल-चाल है, अिसलिए
 कलाम आसानीसे समझमें आता है और बड़ा लुत्फ़ देता है। ग़ज़लके
 सिवाय किसी दूसरी सनफ़में अिन्होंने तबअ-आजमाअी (बुद्धिबलकी परीक्षा)
 नहीं की। हकीकतमें बंदिशकी चुस्ती, लफ़्ज़ोंकी मिठास और ग़ज़मूनकी बलंदी
 में नासिखसे आतिश बहुत आगे बढ़ गये हैं। और अेक हकीकी शायरकी
 हैसियतसे अिनको बहुत अँचा दर्जा हासिल हुआ है। यह बहुत कम पढ़े-
 लिखे थे पर अिनकी प्रतिभाने अिनकी शिक्काकी कमीको पूरा कर दिया था।

नासिखके साथ अिनकी चश्मकेँ चला करती थीं । मगर अुनके बारेमें अिनके दिलमें कभी बुराअी नहीं आयी । अिसी वजहसे नासिखके मरनेके बाद अिन्होंने शेर कहना छोड़ दिया ।

अिनके शागिर्द काफ़ी तादादमें थे । जिनमेंसे 'रिंद', 'सबा', 'ख़लील' 'नसीम' वगैरह बहुत मशहूर हैं । अिनके कलामका नमूना देखिअे:—

मुन तो सही जहाँमें है तेरा फ़िसाना क्या ।
 कहती है तुभको खल्के खुदा गायबाना क्या ॥
 ज़ेरे जमीसे आता है गुल सो जर बक़फ़ ।
 काँहने रास्तेमें लुटाया खज़ाना क्या ? ॥
 चारों तरफ़से सूरतमें जानाँ हो जल्वागर ।
 दिल साफ़ हो तेरा तो है आअीना-ख़ाना क्या ? ॥
 आती है किस तरहसे मेरी कब्ज़े रूहको ।
 देखू तो मौत ढूँढ़ रही है बहाना क्या ? ॥
 होता है ज़र्द मुनके जो नामर्द मुद्दअी ।
 हस्तमकी दास्तौँ है हमारा फ़िसाना क्या ? ॥
 यौँ मुद्दअी हसदसे न दे दाद तो न दे ।
 आतिश ग़जल यह तूने कही आशिक़ाना क्या ॥

—÷—

अख़्तर

स. १८२८-१८८७ अी. सुल्तान वाजिद अली शाह 'अख़्तर' सल्त-
 नत अवधके आखिरी ताजदार थे । अिनके वालिद नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ़' भी मशहूर शायर और शायरोंके क़द्रदौँ थे जिनके दरबारमें सौदा, मीर, सोज़ वगैरह बड़े बड़े शायर रहते थे । आसफ़के बारेमें यह कहावत मशहूर है कि 'जिसे न दे मौला उसे दे आसफ़ुद्दौला ।' अुनका कलाम सादगी और दर्दसे भरा हुआ है । अुनके चल बसनेपर यानी स. १८८४ अी. में नवाब वाजिद अली शाह तख़्तनशीं हो गये । अिन्हें अिमारतें बनानेका बेहद शौक़ था और अिसी शौक़की वजहसे अिन्होंने लख-
 नअूके कैसर बाग़ पर दो करोड़ रुपया खर्च कर दिया था । शुरू शुरूमें यह

बड़ी दिलचस्पी और जिम्मेदारीके साथ मुन्कका अन्तजाम देखा करते थे नगर नालायक मुसाहिबों और बदख्वाह हमनशीनोंके चंगुलमें फँसकर धीरे धीरे अिनका दिमाग खराब होता गया और सल्तनतके अन्तजाम परसे ध्यान झुचट गया। अिनकी अश व अिशरतकी बदौलत मुन्कमें बदअन्तजामी फैल गयी जिससे स. १२५६ अी. में अिनको अितनी बड़ी सल्तनतसे हाथ धोना पड़ा। अिसके बाद गदरके जमानेमें अिन्हें कलकत्तेके फोर्टमें कैद करके रखा गया। गदरके खत्म हो जानेपर भी अिनको वहीं मटियाबुर्जमें कयाम करना पड़ा। यहाँ भी अिन्होंने बड़ी बड़ी आलीशान कोठियाँ और दिलकश बाग बनवाये। जिससे वह लखनऊका अेक मुस्तसर नमूना बन गया।

अिसी जमानेमें दिल्लीके बादशाह दूसरे बहादुरशाहको भी कैद करके रंगून भेजा गया जिससे लखनऊ और दिल्ली—जो अेक अरसेतक अुर्दू शायरीके मस्कन व मामन (घर) रह चुके थे—अदबी लिहाजसे बिलकुल वीरान हो गये। और यहाँके शायर अब हिन्दुस्तानी रियासतोंकी तरफ निहायत आज़िजी और हसरतकी निगाहोंसे देखने लगे। लखनऊके बाज़ शायर तो अपने आक्ता 'अख्तर' के साथ और बाज़ गदरके बाद कलकत्ता चले गये। अिन शायरोंके बाज़िदअलीने बड़े बड़े खिताब दे दिये और पैसेसे भी मदद की। वहाँ आये दिन मशायरे होते थे जिससे मटियाबुर्ज लखनऊका शाही मुहल्ला मालूम होता था। 'बर्क' 'दरख़श' 'बहार' 'हुनर' वगैरह शायरोंने यहाँ नाम व पैसा कमाया और अुर्दू ज़बान व शायरीका चर्चा तमाम बंगाल-भरमें फैल गया।

अख्तरकी तसनीफ़ें बहुत बड़ी तादादमें मौजूद हैं। तकरीबन् चालीस जिल्दें होंगी जिनमें बहुतसे गज़लोंके दीवान, मसनवियाँ, मर्सिये, कसीदे वगैरह हैं। अिनकी टुमरियाँ आज भी बहुत पसंद की जाती हैं। यह 'असीर' और 'बर्क' से अिमलाह लेते थे। अुर्दूके अलावा ठेठ हिन्दीमें भी अिनका कलाम मौजूद है। अपनी प्यारी बेवी 'ज़ीनत मुहल' के नाम जो ख़त अिन्होंने कलकत्तेसे लिखे हैं वह बहुत ही दिलचस्प हैं। अिनकी ज़बान निहायन साफ़ और मीठी मालूम होती है मगर अुसमें दर्द और कोमलताकी कुछ कमी रहती है। कलामका नमूना देखिये:—

सलतनत छोड़ दी दरवेशोंकी सोइबतके लिये ।
 जोफ़ाँचे अशक़में है कोअरी न हमसरअपना ॥
 क़ैद होनेसे कहीं बूअरे रियासत जायगी ?
 लाख गर्दिश आसमाँ को हो, ज़मी होता नहीं ॥
 जअरीफ़ीमें भी लपटी है बलाअ शायरी हमसे ।
 न क़ूटेगी कभी 'अख़्तार' कलमसे मरके तिम्लाना ॥

में लखनभू में जैसी अज़ा करता था ।
 और गिरियअ अन्दोहो बुका करता था ॥
 वैसा ही मेरा हाल है कलकत्ता में ।
 पर याद नहीं कि अश कया करता था ॥

कया हुआ गर अशक़में तेरे लुटा मुल्के अवध ।
 यक गदा अपनासा अब्राहीम अन्हम हो गया ॥

लगा ठोकर न पाये नाज़ से तू
 कभी ताजे सरे हिन्दोस्ता थे ॥
 गुरूर व मैपरस्ती, खूअेबद व रंज ।
 ये अग्निनाँके लिये हैं चार दोजख ॥

—————+—————

अस ज़मानेमें और भी बहुतसे शायर गुज़रे हैं जिनमें ज़्यादा मशहूर यह हैं:—

१. 'नसीम'

स. १८१२— पंडित दयाशंकर कौल 'नसीम' काश्मीरी ब्राह्मण थे ।
 १८४४ अ.ी. अिनकी मसनवी 'गुलज़ार नसीम' अुर्दू साहित्यमें ऊँचे दर्जेकी मसनवी समझी जाती है । अिनकी कविता आम व ख़ाससे बहुत पसन्द की जाती थी ।

२. 'अमानत'

स. १८१६ सैयद आग़ा हसन 'अमानत' मियाँ दिलगीरके शागिर्द थे ।
 १८५८अ.ी. अिनकी तसनीफ़ 'अन्दर सभा' अुर्दू नाटकोंमें सबसे

पहली गिनी जाती है । अस किताबकी भाषा बिल्कुल बनावटी और तुक-बन्द है ।

३. ज़की

मृ. स. १८६४ अ. शेख मेहदी अली 'ज़की' एक आला दर्जेके शायर थे । अिनके मलिकुशशुअराका म्निताब

मिला था ।

अिनके अलावा 'बन्द' 'इश्क' 'मुनीर' 'मेन्द' 'आबाद' दगैरह और भी बहुतसे शायरोंने अस ज़मानेको रोशन किया ।



मर्सिया और मर्सियागो

मर्सियाकैसे कहते हैं ? मर्सिया नज्मकी वह किस्म है जिसमें किसी मुर्दा शख्सकी तारीफ़ की जाय । वह कसीदके बिल्कुल उलटा है क्योंकि कसीदमें किसी ज़िन्दा शख्सकी तारीफ़ होती है । अस्तिलाह (परिभाषा) में मर्सिया श्रुन्हीं नज्मोंको कहते हैं जिनमें हज़रत अिमाम हसन, हज़रत अिमाम हुसेन और करबलाके दूसरे शहीदोंकी शहादतका जिक्र किया जाय । अस्तामको माननेवाले लोग अिसके बहुत शौक्तीन रहे हैं । प्रारंभमें अिस प्रकारकी नज्मोंमें अपर लिखे हुआ लोगोंके हुस्नके गुणोंका बयान किया जाता । और श्रुनकी मौतपर अक़सोस जाहिर किया जाता । उनकी असली गरज़ रोना पीटना होती थी । लेकिन अ़क़ लम्बे अरसेके बाद मर्सियाका दायरा दसीअ़ होता गया और अुसमें मुख्तलिफ़ किस्मके नये नये मज़मून दाख़िल होने लगे । मसलन् चेहरा, जंगके दृश्य, कुदरतके नज़ारे, घोंडे और तलवारकी तारीफ़, सामान व असबाब वगैरह चीज़ें कसरतसे अिस्तेमाल होने लगीं । अिस किस्मके मज़मूनोंका अिज़ाफ़ा (वृद्धि) होनेसे मर्सियाका मर्तबा बढ़ गया और आख़िरकार अुसने श्रुर्द शायरीमें अपनी अ़क़ ख़ास जगह बना दी । कहते हैं कि अरबकी शायरीकी अब्तदा मर्सियासे ही हुआ थी । मर्सियागो यानी मर्सिया कहनेवाला और मर्सियागोअ़ी यानी मर्सिया कहना ।

लेकिन मर्सियागोअ़ीसे कोअ़ी ज़ाती फ़ायदा न था, क्योंकि अुसमें जिसकी तारीफ़ होती थी अुससे कुछ मिलनेकी संभावना नहीं होती थी । अिसलिये कसीदागोअ़ीकी अ़ीजाद हुआ । दुनियामें अपनी खुशामद दिल-चस्पीसे सुनने और सुनानेवालोंकी तादाद तथा अुसके लिये काफ़ी रुपया पैसा खर्च करनेवालोंकी तादाद किसी भी ज़मानेमें कम नहीं रही है । अिसीलिये

कसीदागोभी पैसा कमानेका कामयाब ज़रिया हो गयी । औसा मालूम होता है कि फ़ारसीकी अिब्तदा कसीदागोभीसे हुयी है जिसेसे अुसमें काफ़ी दिखावटी-पन आ गया ।

हम यह नहीं कह सकते कि अुर्दूकी अिब्तदा कसीदागोभीसे हुयी या मर्सियागोभीसे । लेकिन अितना तो साफ़ जाहिर है कि अुसकी अिब्तदामें कसीदा और मर्सिया दोनों मौजूद थे । दक्षिणके बिजापुर और गोलकुंडेके बादशाह मज़हबपरस्त होनेसे मर्सिया वगैरह खूब कहते थे । मगर उस वक़्त मर्सिया बिलकुल अिब्तदाअी हालतमें था । अिसके बाद वली, मीर, अमानी, दरख़्शा, कादिर, नदीम, मीर और सौदाने भी मर्सिये लिखे मगर अुनमें मज़-हबियत काही रंग गाढ़ा था ।

सौदाके वक़्त तक मर्सिया 'चौमिसरा' (चतुष्पदी) हुआ करता था । सौदा ने सबसे पहले अुसे मुसद्दस (षट्पदी) में लिखा जो अब तक जारी है । ज़मीरने मर्सियेके मज़मूनमें अिजाफ़ा किया और अनीस व दर्बार्के ज़मानेमें वह अपने कमाल तक पहुँच गया ।

खलीक:-

मीर मुस्तहसन 'खलीक, मशहूर मसनवी 'सिहरुलबयान' के लेखक मीर हसनके साहबज़ाद थे । अिन्होंने बहुत छोटी अुम्रमें सखुनकी मशक़ की और मसहफ़ी के शागिर्द बन गये । यह पहले फ़ैजाबादमें और बादको लखनअूमें रहते थे । बहुत आला दर्जेके शायर थे । यह अपनी गज़लें अक्सर बेच डालते थे मगर फिर भी अिनका अेक दीवान मौजूद है । यह 'ज़मीर' 'कसीह' और 'दिलगीर' के हमअसर (सम-कालीन) थे । ज़मीर और खलीककी होड़ने मर्सियाकी कलाकी तक़मील व तरक्क़ीमें मदद पहुँचायी । अिन्होंने चौमिसराको छोड़कर सौदाके मुसद्दसको फ़ैलाया । मर्सिया पढ़ते वक़्त दर्द और असरके बजाय अब लफ़्ज़ोंपर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा । पहले मर्सिया चालीस पचास बन्दों (पदों) तक ही महबूद था । मीर ज़मीरने पहले पहले अुसे बढ़ा दिया, अिस तरह कि पहले तमहीद फिर सरापा (नख़शिख), फिर जंगके मैदानका नक़शा और आखिरमें शहदतका ज़िक़्र अिस किस्मके

मर्सियोकी बड़ी कद्र हुआ और इससे मर्सियागोर्गीके आलममें एक बड़ा अन्कलाब पैदा हो गया । पहले तो सिर्फ रोना-रुलाना था । अब और चीजोंके शामिल हो जानेसे उसकी जाँच-पड़ताल भी होने लगी । इससे आयन्दके लिए तरक्कीकी राहें खुल गयीं । अब इस क्रममें हिन्दू लोग भी बड़ी दिलचस्पी लेने लगे ।

खलीफने ज़बानकी सफ़ाओ और मुहावरोंकी सेहत (शुद्धि) पर बहुत तवज़ुह की जिसकी पैरवी अनीसने दिल लगाकर की । खलीफ जब मर्सिया पढ़ते थे तब सिर्फ़ आँख व गर्दनसे काम लेते थे मगर अपने भावोंके मुताबिक सुननेवालोंको रुलाते या हँसाते थे । इनके खानदानकी ज़बान स्टैंडर्ड अर्द्ध मानी जाती है । दूसरा कोओ भी खानदान अतने काबिल और मशहूर शायरों का सिलमिला नहीं पेशकर सका है । इसीलिए शेख अिमामवरूश 'नासिख' अप्पे शार्गिदोसे कहा करते थे कि 'अगर ज़बान सीखना हो तो खलीफ़ के घरानेसे सीखो ।' इस खानदानके मशहूर शायर हैं मीर अमामी, जाहक, हुसन, खल्क, खलीफ़, मुहसन, अनीस, मूनेस, अन्स, नफीस, दुस्तर, अरिफ़ा, वगैरह ।

मीर अनीस

स० १८०२ मीर बबरअली 'अनीस' खलीफ़के बेटे और शार्गिर्द भी १८७४ श्री० थे । इनमें विद्वत्ता अधिक नहीं थी पर कवित्वशक्ति आश्चर्यदत्त थी । जीवमात्रमें सौंदर्य देखते थे । मिजाजमें अिनहा दर्जेकी खुददारी थी जिसलिए पैसे या नामकी लालचसे किसीकी तारीफ़में अिनहोंने एक हर्फ़भी ज़बानसे नहीं निकाला । अिनहोंने द्वाअरी लाख शेर यादगार छोड़े हैं जिनमें हजारों मर्सिये, सलाम, क़ितअे, राजलें वगैरह शामिल हैं । अिनका पढ़नेका ढंग निहायत दिलकश था जिसके लिये अुन्होंने आओनेके सामने बैठकर मश्क़ की थी । अुर्दकी अदबी दुनियांमें अिनहें वही दर्जा हासिल है जो अंग्रेज़ी साहित्यके जगतमें शेक्सपियरको और संस्कृत लिटरेचरमें वाल्मीकि को हासिल है । अिनहोंने अुर्दू ज़बानकी बहुत भारी सेवा की है । अिनका कलाब निहायत क़सीद और ताज़ा है । मुहाविरोंकी सेहतका वह बहुत ख़याल रखते थे ।

अुनकी वजहसे जवानमें बहुतसे नये मुहाविरे दाखिल हो गये । अिन्हें कुदरतके मन्जरोकी हूबहू तस्वीरें खींचनेमें कमाल हासिल था । अिसी तरह अपने भावों-को जाहिर करनेमें भी अिनको बड़ी कुदरत हासिल थी । फ़िजूल मुबालगे (अतिशयोक्तियाँ) और बेजा तमसीलें अिनमें नहीं मिलतीं । सफ़ाअी, लफ़्जों को ठीक जगह पर बैठाना और जोर यह सब गुण अुनके कलाममें मिले हुये हैं । अिनके शेर बहुत साफ़, सलीस और जल्द समझमें आनेवाले हैं । अनीस का मर्त्तबा अुर्दू शायरीके अितिहासमें पहले सफेपर बहुत ऊँचा है । अिन्हें अुर्दू के फ़िर्दौसी (अेक मशहूर फ़ारसी कवि) कहते हैं । जिस नेचरल शायरीका आगाज हाली और आजादके जमानेमें हुआ उसकी दागबेल भीर अनीसने वाली थी ।

कलामका नमूना देखिये :-

गुनाहका बोझ जो गरदन प' हम अुठाके चले ।
खुदाके आगे खिजालतसे सर भुकाके चले ॥
किसीका दिल न किया हमने पायमाल कभी ।
चले जो राह तो चिऊँटीको भी बचाके चले ॥
मिला जिन्हें अुन्हें अुफ़तादगीसे औज मिला ।
अुन्होंने खाअी है ठोकर जो सर बठाके चले ॥
मुक़ाम यों हुआ अिस कारगाहे दुनियामें ।
कि जैसे दिनको मुसाफ़िर सरामें आ के चले ॥
अनीस दमका भराँसा नहीं ठहर जाओ ।

—X—

चिराग लेके कहाँ सामने हवाके चले ॥
किस तरह खिले दिल कि जिगरबंद नहीं है ।
घर कब्रसे बदतर है जो फ़र्जन्द नहीं है ॥
आरामे जिगर ताब व तवाँ साथ है अिसके ।
फिरता है जिधर रिश्ताअे जाँ साथ है अिसके ॥

दबीर

स. १८०३—

१८६८ आ.

मिर्जा सलामतअली 'दबीर' दिल्लीके रहनेवाले थे मगर रोटीकी खोजमें लखनऊ पहुँचे और वहीं मशहूर होगये। अिनके मशहूर हो चुकनेके बाद मीर अनीस फ़ैजाबादसे लखनऊ चले गये और तबसे अिन दोनोंमें मुकाबला शुरू हो गया। लेकिन अिस मुकाबलेमें कभी कोअी भद्दी चीज़ नहीं आयी जैसे अ़िशा और मसहफ़ाके ज़मानेमें आमतौरपर देखा गया था। बल्कि यह दोनों अ़क दूसरके विरोधी होते हुअे भी आपसमें बड़े अ़दब व अ़दाबसे पेश आते थे। मर्सियागोअीके यह पूरे अ़स्ताद थे। दोनोंने अपनी सारी अ़ुन्न अ़िसीमें बिता दी। अपनी नयी नयी तशबीहें, मज़मूनोंकी ताज़गी और लफ़्ज़ोंके भारीपनके वास्ते दबीर बहुत मशहूर हैं। अ़िनके अ़ालिम फ़ाज़िल होनेको फ़लक कलाममें बराबर दिखाअी देती है। अ़ुर्दूके साथ अ़रबी लफ़्ज़ोंका जोड़ अ़िस होशियारीसे बिठाते थे कि देखते दी बन पड़ता है। अ़ुनके खयाल अ़ितने अ़ितने किस्मके होते हैं कि ज़रा भी ग़ौर करनेसे बड़ा ताज़्ज़ुब होता है। यह मिर्जा ज़मीरके शागिर्द थे।

मीर अनीस और मिर्जा दबीरमें बहुत बड़ा फ़र्क़ है। अ़व्वल तो यह है कि मीर मौरोसी (रिक्थकमी) शायर थे और मिर्जाको यह बड़प्पन हासिल न था। फिर अनीसका ध्याना ज़्यादातर ज़वानकी सफ़ाई, बंदिशकी चुस्ती और मुहावरोंकी ठुठुस्ती वग़ैरह चीज़ोंकी तरफ़ रहता था, और दबीरको खयालोंकी अ़धिकता, नयी नयी तमसीलों और भारी भारी शब्दोंका खयाल ज़्यादा रहता था। मीर साहब आसानी और सादगीको ज़्यादा क़ीमत देते थे; मगर मिर्जा साहब कारीगरी और रंगीनीके आगे बाक़ी चीज़ोंको हेच (तुच्छ) समझते थे। अ़िन दोनोंके शिष्य बहुत बड़ी तादादमें थे जो अपनेको अनीसिये और दबीरिये कहलवाते और फ़गड़ते रहते थे। दबीरके कलामका नमूना देखिये :

चमनकी बे सबातीपर जो अ़ुसका ध्यान जाता है।

तो क्या रोती है शबनम मुँह पै' रखके गुलके दामनको।

मैं कुशला हूँ किसी गुलके किसी आलूदः दन्तों का ।
 चढ़ाना बागबाँ तुरबत पै मेरी बगें सौसन को ”
 ‘दबीर’ आयेगा कब वह भूलकर गोरे गरीबाँ पर ।
 जो अक्सर रौंदता था नाजसं फूलोंके खिरमन को ”

दुनियाका अजीब कारखाना देखा ।

किस किस का न था जमाना देखा ॥

बरसां रहा जिनके सरपै छतरे जरीं ।

तुरबत पै न उनकी शामियाना देखा ॥

अस जमानेमें मियाँ दिलगीर, फसीद मस्कीन, अफसुर्दा, सिकन्दर,
 गदा, वगैरह सैकड़ों मर्सियागो गुजरे हैं ।

लखनऊ हमेशा शीआपंथियोंका मरकज (केंद्र) रहा है य हाँके
 ज्यादातर बाशिन्दे और नवाब शीआ थे । असलिये यहाँ मर्सियागोअने
 जो तरक्की हासिलकी वह कोअरी अचरज की बात नहीं है । क्योंकि मर्सियामें
 जिन शहीदोंका जिक्र हुआ करता था वह सब शीआ लोगोंके पूजनीय
 व्यक्ति थे । अिससे जवानको काफ़ी फायदा पहुँचा । आजकलकी तर्जमें जो
 खामियतें पाई जाती हैं वह सब मर्सियामें मौजूद थीं । सारांश, अुर्दूके
 महदूद मैदानको मर्सियाने बहुत लम्बाचौड़ा बना दिया, और अुर्दूके
 औजारखानेमें अेक निहायत कीमती और जरूरी औजारका अिजाफ़ा हुआ
 वीरसकी कविताकी जो कमी अुर्दूमें एक जमानेसे महसूस हो रही थी उसको
 पूरा करनेका काम मर्सियाने किया । अब सम्बन्ध लम्बी लम्बी कविता भी
 लिखी जाने लगी और संसारकी ऊँची ऊँची जयानोंके साथ बैठनेका हक अुर्दूको
 हासिल हुआ ।



फिरसे दिल्ली

भूमिका पिछले अध्यायमें हम देख चुके हैं कि मरतनतकी तबार्हीकी वजहसे दिल्लीकी शायरीका चिराग किम तरह बुझने लगा और लखनभूकी मुहब्बतके तेलसे थोड़ी देरके लिये वह किम तरह रोशन हुआ। हम लखनभूकी महिफिलोंमें अिस कद्र मस्त हो गये थे कि बेचारी दिल्लीकी तरफ तबज्जुह करनेकी हमें न फुरसत हुई न जरूरत ही। हम समझ रहे थे कि दिल्लीकी शायरी अब मर चुकी है।

लेकिन नहीं ! वह चिराग बुझा नहीं था और न वह कभी बुझ भी सकता था। हाँ, उसमें तेलकी कुछ कमी जरूर हुआ थी जिससे उसकी रोशनी थोड़ी पड़ती जा रही थी। अितनेमें वहाँ ऐसे ऐसे बाकमाल (कमाल दिखानेवाला) पैदा हो गये जिन्होंने अपनी सारी जिन्दगी उस चिरागको सबसे ज्यादा रोशन करनेमें लगा दी। और खुदाका शुक्र कि वह कामयाब भी हो गये। फिर नये सिरेसे अुरुज (अुत्थान) हो गया। पुराने ज़मानेके बाकमालोंने जो बीज बोया था वह बेकार नहीं गया। उनकी कोशिशें हरी भरी हुआँ और वह दरख्त जिसको अगले वक्तोंके शायरोंने बड़ी मेहनतसे सींचा था अब ज़ोरसे फफकना शुरू हुआ। पतझड़ गुज़र गया और नवबसन्त अपने साज व सिंगारके साथ आ मौजूद हुआ।

ज्वार और भाटा, तरक्की और तनज़ुल, अुत्थान और पतनका चक्र दुनियामें चलता ही रहता है। यह हम नहीं सकता कि कोअी चीज़ सिर्फ तरक्की ही तरक्की करती जाय या सिर्फ तनज़ुलकी गारमें नीचे ही नीचे बैठती जाय ! थोड़े अर्सेकी सामोशीके बाद दिल्लीकी शायरीकी बुलबुलने फिरसे चहचहाना शुरू किया। अिस ज़मानेके शायर गालिब, ज़फर, जौक, मोमिन वगैरहके कलाम हकीकी-शायरी और सही भावोंसे लबालब भरे हुए हैं।

लेकिन इस जमानेमें जबानपर विदेशी भाषाओंका जो पुट गहरा हो गया उसकी वजहसे उसका एक लिहाजसे नुकसान हो गया। वह यह कि पुराने शायरोंकी बरती हुई सीधी सादी हिन्दी तरकीबोंको जबानसे बाहर कर दिया गया और अनुकी जगह बड़े बड़े अरबी और फ़ारसी लफ्ज़ रख दिये गये। नतीजा इसका यह हुआ कि वह आम लोगोंके कामकी न रही।

गालिब

स. १७६६-१८६६ अ.। मिर्जा असदुल्ला खाँ 'गालिब' ने अपनी शुरू शुरूकी तालीम आगरेमें पायी जहाँ 'नज़ीर' अकबराबादीसे अन्होंने कुछ फ़िताबें पढ़ी। यह पहले 'असद' उपनाम करते थे जिसे अन्होंने बादमें छोड़ दिया। 'हरमिज' नामके एक फ़ारसी शख्सकी मददसे गालिबने फ़ारसी पढ़ी और उसीमें तबियत-आजमाश्री करने लगे। फ़ारसी अदबमें अिनका दर्जा निहायत आला और मुमताज़ (प्रतिष्ठित) है। कहीं-कहीं तो खुसरौ और फ़ैज़ीसे भी आगे बढ़ गये हैं। अर्दूकी बनिस्बत अन्हें फ़ारसीसे ज्यादा मुहब्बत थी और अपने फ़ारसी कलामको ही वह गव करनेकी जीज़ समझते थे। 'पंच आहंग' 'कुलियाते नज़्मे गालिब' 'मेहर-नीमरोज़' वगैरह फ़ारसी तसनीफ़ोंने अिनको बहुत बलन्द दर्जा बख़्शा है।

लेकिन जायकेकी तब्दीलीके लिये और अपने दोस्तोंके असरारसे वह कभी कभी अर्दू शेर कह लिया करते थे। अससे यह हरगिज़ नहीं समझना चाहिये कि अिनका दर्जा अर्दू शायरीमें कुछ कम होगा। ना ! ऐसी बात नहीं है। वह भले ही अपने अर्दू कलामको हेच समझते हों पर अर्दूदों लोगोंके वास्ते अिनका कलाम मीर और सौदासे किसी तरह कम नहीं है। हाँ अिनकी फ़ारसीकी मुहब्बतने अिनके कलामको कुछ मुश्किल जरूर बना दिया है मगर अिनके दूसरे वस्फ़ोंको मद्देनज़र रखनेसे मालूम होता है कि जो भी हो, गालिब बेशक एक बहुत बड़े शायर थे।

गालिबकी घरेलू ज़िन्दगी बहुत ही दर्दसे भरी हुई थी। बाहरी ज़िन्दगी में भी वह काफी मुसीबतों और दुखोंका मजा चखे हुए थे जिनसे अिनका कलाम दर्द व असरसे लबालब भरा हुआ है। लेकिन अिनका मिज़ाज बड़ा

शगुफ्ता और दिल बड़ा हँसोड़ था जिससे बड़ीसे बड़ी आफ़तोंको वह हँस खेलकर काट देते थे। और असलिये उनकी शायरीमें जो अुदासी और दर्दकी तारीक़ी (अंधेरा) है उसे उनकी हँसोड़ तबियत और शाख़ी दूर करनेकी कोशिश करती है।

अिनका अ़ेक छोटा-सा दीवान है जिसमें तक़रीबन अठारह सौ शेर हैं। लेकिन उनकी शुहरत असलमें उनके अुर्दू खतोके कारण ज़्यादा हुई है। यह खत दो जिल्दोंमें शाय़ा हुआ है। अ़ेकका नाम है 'अुर्दू अ़े मुअ़ल्ला' और दूसरेका 'अुर्दू हिन्दी'। अिनकी ज़बान बहुत साफ़-सुथरी और दिलबश जनताके हालमें शरीक होनेको यह बहुत बुरा मानते थे असलिये अिनकी शुरू शुरू की शायरीकी ज़बान आम लोगोंकी ज़बानसे बहुत ही अलाहिदा मालूम होती है। लेकिन आख़िरी अ़म्रमें अिनकी ज़बान कुछ ज़्यादा सुलभी हुआ और आसान बन गयी

ग़ालिबमें मौलिकता तो हद दर्जकी है। सिर्फ़ तुकबन्दी या काफ़िया-पैमात्री से वह काम नहीं चलाते। यह लफ़्ज़ोंके रास्तेपर नहीं चलते बल्कि लफ़्ज़ ही खयालोंके गुलाम बनकर उनके पीछे पीछे चलते हैं। उनके शेर उनके विचारोंकी सही सही तस्वीरें आँखोंके सामने खड़ी कर देते हैं। अक्सर कलाम फ़िलसुफ़ियत और हकीक़ी बातोंसे भरा हुआ है। फ़िलसुफ़ाको निहायत आसानी और सादगीसे अदा करनेकी कला अिनमें बहुत ऊँचे दर्जे तक पायी जाती है।

यह फ़िरक़ाबन्दी और मज़हबी तास्सुबोंसे बिल्कुल परे थे। यही वजह है कि अिनके शागिदोंमें मुंशी हरगोपाल 'तुफ़्ता' जैसे हिन्दी शायर थे। अिनके दोस्तोंमें भी कभी ग़ैर मुसलिम लोग शामिल थे। अिनके मशहूर शागिद 'रख़्शा' 'मज़रूह' 'तुफ़्ता' 'हाली' वगैरह हैं।

दिल्लीके बादशाहसे अन्हें 'नज़्मुद्दौला दबीर अल्मुत्क निज़ामे जंग' खिताब मिला था। अपने ज़मानेके यह बहुत बड़े माहिर शायरीके आसमानके सबसे रोशन सितारे और कामिल अुस्ताद थे।

अिनके अुर्दू कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअिये :-

कोअी अुम्मीद बर नहीं आती। कोअी सूरत नज़र नहीं आती ॥

मौतका अ़ेक दिन मुअ़यन है। नींद ज़्यों रात भर नहीं आती ॥

आगे आती थीं हाले दिल प' हँसी । अब किसी बान पर नहीं आती ॥
 जानता हूँ सवाबे ताश्चित व जहद । पर तबीयत अिधर नहीं आती ॥
 है कुछ अिसीही बात जो चुप हूँ । वरना क्या बात कर नहीं आती ॥
 क्यों न चीखूँ कि याद करते हैं । मेरी आवाज गर नहीं आती ॥
 दायो दिल गर नजर नहीं आता । बू भी अि चारागर नहीं आती ।
 हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी । कुछ हमारी खबर नहीं आती ॥
 मरते हैं आरजूमें मरनेकी । मौत आती है पर नहीं आती ॥

काबे किस मुँहसे जाओगे गालिब

शर्म तुमको मगर नहीं आती ॥

जौक

(स. १७८६—१८५४ अी.) शेख अिब्राहीम 'जौक' दिल्लीके अेक गरीब सिपाहीके बेटे थे । बचपन ही में

अिन्हें शायरीसे मुहब्बत हो गयी और यह 'शाह नसीर' के शागिर्द बन गये । लेकिन शागिर्दके जहनकी तेजी देखकर अुस्तादके दिलमें जलन होने लगी और दोनोंमें झगडा हो गया । अुसके बाद जौकने किसीको अुस्ताद न बनाया । अितफाकसे बहादुरशाह 'जफर' बादशाहकी गजलोंको सुधारनेका काम अिन्हें मिल गया और यह बहुत ही जल्द मशहूर हुअे । अिनके जहनकी तेजी, तबीयतकी चमक और हाफिजाकी कूवतकी देखकर अकबरशाह (दूसरे) ने अिन्हें 'खाकानी अे हिन्द' का खिताब अता किया । जौक बड़े खुदातर्स (खुदासे डरकर रहनेवाले) और अिनसानी हमदर्दसे लबरेज थे ।

अिन्होंने जवानको खूब साफ़ किया । मुहावरों और मिसालोंके अिस्तेमालमें वह अपना जवाब नहीं रखते थे । नसीर, सौदा, दर्द, मसहफ़ी वगैरह सभी अूँचे दर्जेके शायरोंका रंग अिनमें पाया जाता है । यह गजल और कसीदेके पूरे अुस्ताद थे । मुखम्मस, रुवाअियाँ और तारीखें भी अिन्होंने लिखी हैं । लेकिन सलाम, मर्सिये और हजोयें नहीं पायी जातीं । पिंगलके शास्त्रसे वह बहुत अच्छी तरह वाकिफ़ थे । तकल्लुफ़ और बनावट अुनमें नामकी भी नहीं है । अिनके खयाल बहुत बलन्द होते हैं । अिनका सारा कलाम ग़दरकी लूटमारमें जाया हो गया था मगर अुनके शागिर्द अाजाद, हाफिज, अिन-

बरी, जहीरी वगैरहने बड़ी मेहनतसे उसे कुछ हद तक फिरसे मुरतब (संग्रहीत) किया है। अिनके कलामका नमूना देखिये :—

लिखिये उसे खतमें कि सितम अुठ नहीं सकता ।
 पर जौकसे हाथोंमें कलम अुठ नहीं सकता ॥
 आती है सदाअे जसें नाकअे लैला ।
 पर हैफ़ कि मजनूँका कदम अुठ नहीं सका ॥
 हर दागे मुआसी मेरा अिस दामने तरसे ।
 ज्यूँ हकें सरे कागज़े नम अुठ नहीं सकता ॥
 अितना हूँ तेरी तेगका शर्मिन्दा अे अेहसाँ ।
 सर मेरा, तेरे सरकी कसम अुठ नहीं सकता ॥
 परदाअे दरे काबेसे अुठना तो है आसाँ ।
 पर परदअे रुखसारे सनम—अुठ नहीं सकता ॥
 दुनियाका जरोमाल किया जमा तो क्या जौक ॥
 कुछ फ़ायदा बे दस्त व करम अुठ नहीं सकता ॥

दरियाअे अशक चश्मले जिस आन बह गया ।
 सुन लीजियो कि अर्शका अँवान बह गया ॥
 जाहिद शराब पीनेसे काफ़िर हुआ मैं क्यों ?
 क्या डेढ़ चुल्लू पानीसे अीमाँ बह गया ?
 पंजाबमें भी वह न रही आव व ताबे हुस्न ।
 अे जौक ! पानी अब तो वह मुलतान बह गया ॥

—X—

मोमिन

(स. १८००—१८५२ अी.) मुहम्मद मोमिनखाँ 'मोमिन' दिल्लीके रहनेवाले थे । चंद रोज तक

शाह नसीरके शागिर्द रहे मगर अुनके साथ ज़्यादा असें तक न बन सकी । फिर तो किसीकी शागिर्दी न की । कहते हैं कि जवानीमें अिनका खाल-खसन

अच्छा नहीं था जिससे उस जमानेके कलाममें भद्दा और बेहूदा आशिकाना रंग भरा हुआ है। लेकिन आखिरी युगमें उसमें दृढ़ता और मजबूती आ गयी। अपना हाफिजा, तिब्बका फन, नजूम (ज्योतिष) और शतरंजमेंकी काबिलियतके लिये यह बहुत मशहूर थे। अपनी काबिलियत और जाती जौहरका उन्हें अिस दर्जा खयाल था कि उसके मुकाबलेमें लोगोंके अच्छे अच्छे गुणोंको हेच समझते थे। आजाद-मिजाजी और वतनकी दोस्ती अिनमें कूटकूटकर भरी हुई थी।

अिनका कुल्लियात अिनके शागिर्द नवाब मुस्तफा खाँ 'शेफता' ने मुरत्तिब किया है। अिसमें अुर्दूका अेक दीवान, कसीदे, मुअम्मे, मुसम्मस, तारीखें वगैरह हैं। लेकिन मोमिन तो अपनी तारीख-गोअीसे ही ज़्यादा मशहूर हुअे। उस फनमें अुन्हें कमाल हासिल था। तारीख निकालनेके नये नये ढंग अिन्होंने अीजाद किये। अिनका पढ़नेका ढंग भी बहुत अच्छा था। अिनके कलाममें नाजुक-खयाली और बलन्द-परदाजी बेहद पायी जाती है; अिनकी तशबीहें बिलकुल गैरमामूली और भावोंका चित्रण बिलकुल सही होता है। फ़ारसियतके वह बड़े प्रेमी थे जिससे अिनकी जवान कुछ बनावटी और मुश्किल हो गयी है। अिनकी तर्ज तो बड़ी अनोखी और दिलकश है मगर अिनका अिशक बाजारी है।

अिनके शागिर्दोंमें 'शेफता' 'तस्कीन' 'नसीम' 'वहशत' वगैरह बहुत मशहूर हैं।

अिनके कलामका नमूना देखिये :—

खुशी न हो मुझे क्योंकर क़ज़ाके आने की ।
 खबर है लाश पे उस बेवफ़ाके आने की ।
 समझके और ही कुछ मर चला मैं अै नासिह ।
 कहा जो तूने नहीं जान जाके आने की ॥
 चली है जान नहीं तो कोअी निकालो राह ।
 तुम अपने पास तक अिस मुन्तलाके आने की ॥
 फिर अबके ला तेरे कुरबान जाऊँ जज़्बा अे दिल ।
 गये हैं यों से वह सौगन्द खा के आने की ॥

मेरे जनाजे पे आनेका है आिरादा तो आ ।
 कि देर अठानेमें क्या है सबाके आने की ॥
 मुझे यह डर है कि मोमिन कहीं न कहता हो ।
 मेरी तसल्लीको रोजे जजा के आने की ॥

—*:—

अधःसारी तो कटी अश्को बुताँमें 'मोमिन' ।
 आखिरी वक्तमें क्या खाक मुसलमाँ होंगे ॥

अस जमानेके दूसरे शायरोंमें 'शेफ़ता' 'तसकीन' 'नसीम' 'जहीर' 'नसीर' 'अनवर' वगैरह बहुत मशहूर हैं । 'जौक' 'ग़ालिब' और 'मोमिन' अिन तीन अुस्तादोंने अस जमानेको रोशन किया । लखनअूकी शायरीमें जो भद्दी बातें पैदा हो गयी थीं उनसे यह दिल्लीकी शायरी बहुत कुछ हद तक पाक रही । जबान भी ज़यादा मुश्किल नहीं हुआ । असमेंसे बोल-चालके शब्दोंको लखनअूकी तरह निकाल बाहर नहीं किया गया । असलिये अिन अुस्तादोंकी शायरी आसान, दिलकश और प्यारी मालूम होती है । नये जमानेकी शायरीकी वुनियाद अिसी जमानेमें पायी जाती है ।



अध्याय दसवाँ

रामपुर और हैद्राबाद

प्रारंभिक:

अवधकी सल्तनतके टूट जानेपर वहाँके शायर तितर-बितर हो गये । कुछ तो अपने मालिकके साथ और कुछ ग़दरके बाद कलकत्ते रवाना हुये और वहाँ अन्होंने नया लखनऊ बसाया ।

इसी ज़मानेमें ग़दरकी वजहसे दिल्लीकी सल्तनत टूट गयी और वहाँ चारों तरफ़ तबाही व बरबादीका आलम छा गया । बड़ों बड़ोंकी जानें और जायदादें ख़तरेमें पड़ गयीं तो फिर शेर व शायरीका ध्यान किसे हो सकता था ? शायरोंका ताल्लुक तो कभी जनतासे आया ही न था अिसलिये उनके सामने यह बड़ा सवाल पैदा हो गया कि वह अब क्या करें ? उनका मालिक और क़द्र करनेवाला बादशाह बहादुरशाह रंगूनमें अंग्रेज़ोंकी कैदमें पड़ा हुआ था । वहाँ वह क्योंकर जा सकते थे ? अिसलिये अुन्होंने देसी दरबारोंमें ही रहना पसन्द किया । अिस ज़मानेके अमीर-अुमरा और नवाब बादशाहोंके पास शायरीके अलावा दूसरा कोअी काम तो था नहीं; अिसलिये अिन बेकार शायरोंको आसानीसे जगह मिल सकी । अिन दरबारोंमें रामपुर और हैदराबादको बहुत महत्त्व है । अुसमें भी फिर रामपुर का दर्जा ज़्यादा अँचा है । अिसके अलावा फ़र्रुखाबाद, अजीमाबाद, मुर्शिदाबाद, टाँडा, टोंक, भूपाल, मंगरूल वगैरह स्थान भी काफ़ी मशहूर हैं ।

रामपुर

ज़्यादातर शायरोंने रामपुरको ही पसंद किया । इसके तीन प्रमुख कारण हैं । अेक यह कि यह रियासत दिल्ली और लखनऊके बीचमें आती है । यानी किसी भी दूसरी रियासतके बनिस्बत यह दोनों मरकिज़ोंको अेकसी

ही नज़दीक है। दूसरे यह कि जिसके शासक खुद ज़बर्दस्त शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे। अिनामों और वज़ीफ़ोंसे वह अपने पास रहनेवाले शायरोंकी हमेशा मदद करते रहते थे। तीसरा और सबसे ज़बर्दस्त कारण यह था कि यहाँके नवाब अपने आश्रित आलिमों, अदीबों और शायरोंकी पूरी पूरी अिज़्जत करते थे। उनको अपने गुलाम नहीं बल्कि साथी समझते थे; उनकी नाज़ुक मिज़ाजियोंसे वह हमेशा वाकिफ़ रहते और उन्हें बर्दाश्त करते। उनमें अितनी अक्लमंड़ी थी कि उन्होंने कुछ न कुछ काम हरेक शायरके सिपुर्द कर दिया जिससे उनका भार रियासतपर न पड़े। अिस अिन्तज़ामसे शायरोंको भी नाराज़ होनेका मौक़ा न मिलता था।

नवाब यूसुफ़अलीख़ाँ 'नाज़िम' और उनके साहबज़ादे नवाब क़लबअलीख़ाँ 'नवाब' दोनों अच्छे शायर और नयी तर्ज़की आज़ाद करने-वाले थे। दिल्ली और लखनऊकी तर्ज़ोंको मिलाकर अिन्होंने अेक तीसरी तर्ज़ शुरू की जो ज़बानके लिये मुफ़ीद साबित हो गयी। नासिख़के ज़मानेसे जो अेक बेजा लफ़्ज़ाज़ी और बनावटीपनका शौक़ ज़बानमें दाख़िल हो गया था वह जाता रहा और अब शायरीके सही सही भावोंको लोग समझने लगे और उसके ठीक ठीक लफ़्ज़ोंसे वाकिफ़ रहने लगे।

अमीर मीनाअी नौ० अमीर अहमद मीनाअी हज़रत मख़दूम स. १८२८-२९ अी. शाह मीनाके ख़ान्दानसे थे जिससे वह मीनाअी कहलाने लगे। 'अमीर' तख़ल्लुस करते थे। कुछ दिनों तक यह वाजिदअली शाह, नवाब लखनऊके दरबारमें रहे मगर ग़दरके बाद और और शायरोंकी तरह अिन्हें भी रोज़ीकी तलाशमें लखनऊ छोड़ना पड़ा। वहाँसे यह रियासत रामपुरमें चले गये और नवाब यूसुफ़अली ख़ाँ और नवाब क़लबअली ख़ाँके अ़स्ताद मुकर्रर हुअे। आख़िरमें हैदराबाद जाकर अिन्होंने अिन्तक़ाल किया। वहाँ उस वक़्त दाग़के क़लामका चर्चा था मगर अिन्हें दाग़से कभी रशक़ न हुआ और न कभी अिन दोनोंमें किसी तरहका मनमुटाव ही हुआ। बल्कि यह दाग़के क़लामकी दिलसे तारीफ़ करते थे।

अमीर साहब बड़े जहीन, मेहनती और जफ़ाक़श (सहिष्णु) आदमी थे । वज़ादारी (अपने सिद्धान्तोंका अच्छी तरह पालन करना) और सादगीके लिये यह बहुत मशहूर थे । गुरु गुरुमें यह 'असीर' से असलाह लेते थे । 'सबा' 'रिन्द' 'खलील' 'सहर' 'अनीस' व 'दबीर' के मार्कोने अिनपर बड़ा असर डाला जिससे अिनकी मशक़ बहुत अच्छी हुई । इनके शागिर्द और दोस्त निहायत कनरतसे थे । अिन्हें खत लिखनेका बड़ा शौक़ था । इनके खतोंका मज़मूआ बड़ा आलीशान और दिलचस्प है । यह बहुत ही बामुहब्बत, रास्तबाज़ और हमदर्द थे । कुरानशरीफ़के हुक्मोंपर यह सख्तीके साथ अमल करते थे ।

अिनका अिन्तदाअी कलाम कुछ भद्दासा मालूम होता है मगर बादमें वह बहुत ऊँचे उठ गये । इनकी ज़बान बड़ी साफ़, पाक और जोशीली है । शायरीके अलग अलग प्रकारोंमें अिनकी रसाअी (पहुँच) थी । शगुफ़्तगी (प्रसन्नता) खयालोंकी नज़ाक़त, बलंद-परदाज़ी, मिठास, जोश, शर्म और हया अिनकी ज़ातके खास जौहर हैं । अिन्होंने कभी भद्दा लफ़ज़ नहीं कहा न किसीकी हज़ो ही लिखी ।

अिनका बहुत सा कलाम ग़दरमें और घरकी आगमें जाया हो गया । फिर भी अिनकी नीचे लिखी किताबें बहुत मशहूर हैं:—अिरशा-दुस्सुलतान; मरातुलग़ैब (अुर्दू दीवान), सनमखानाअे अिदक, अमी-रुल्लुगात, नूरे तजल्ली वग़ैरह । अिनके शागिर्दोंमें रियाज़, ज़लील, हफ़ीज़ सरशार वग़ैरह बहुत मशहूर हैं ।

अिनके कलामका नमूना देखिये:—

अिदकमें जाँसे गुज़रते हैं गुज़रनेवाले ।

मौतकी राह नहीं देखते मरनेवाले ॥

दागे दिलसे मेरे कहता है ये अुसका जोबन ।

देख अिस तरह गुज़रते हैं गुज़रनेवाले ॥

आख़िरी वक़्त भी पूरा न किया वादाअे वरूल ।

आप आते ही रहे मर गये मरनेवाले ॥

जान देनेको कहा मैंने तो हँसकर बोले ।
 तुम सलामत रहो हर रोज़के मरनेवाले ॥
 तेरा व खंजरसे न भगड़ा तेरा व गरदनका चुका ।
 चल दिये मोड़के मुँह फैसला करनेवाले ॥
 आसमाँपर जो सितारे नज़र आये अमीर ।
 याद आये मुझे दाग अपने उभरनेवाले ॥

अमीरके अलावा 'जलील' 'तसलीम' वगैरह बहुतसे शायर रामपुरके दरबारमें थे । यह बड़े आला दर्जेके शायर थे मगर हरेकका ज़िक्र यहाँ नामुमकिन है । वैसे तो दाग भी पहले रामपुर ही में थे लेकिन चूँकि अिनको हैदराबादने ही अितनी शहरत दे दी अिसलिये उनका शुमार हैदराबादी शायरोंमें किया गया है ।

हैदराबाद

रामपुरकी तरह हैदराबादने भी अुस वक्ते शायरोंका बड़ी अिज़्जतके साथ स्वागत किया । वैसे तो हैदराबाद जाना बड़ी मुश्किल बात थी क्योंकि आजकी तरह रेल या मोटरोंका अिन्तजाम न होनेसे अितना लम्बा सफ़र करना कोअी मामूली बात नहीं थी । मगर पेट और नाम तो आदमीसे सब कुछ करा सकते हैं । दिल्ली और अवधका सहारा टूट जानेके बाद वहाँके शायरोंने हैदराबादकी क़द्रदानीकी बात जो सुनी तो बड़ी बड़ी मुसीबतें अुठाकर भी वह हैदराबाद पहुँच गये । वहाँके नवाब खुद अच्छे शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे अुन्होंने अिनका दिलसे स्वागत किया । रामपुर और हैदराबादमें अेक बड़ा फ़र्क़ यह है कि रामपुर और अुसके आसपासके मुल्ककी ज़बान अ़्दू या कमसे कम हिन्दुस्तानी है और हैदराबाद और अुसके अ़्द ग़िर्द तेलुगू, मराठी या कानडी भाषाअें चलती हैं । अिसलिये यहाँ अ़्दू समझनेवालोंकी तादाद अुतनी ज़्यादा नहीं है । मगर फिर भी नवाबों, अमीरों और आलिमोंकी कोशिशसे वहाँके चिराग़की बत्ती ज़्यादा रोशन होती गयी और आज भी होती जा रही है । अिसके खिलाफ़ रामपुरकी रोशनी कुछ मद्धमसी पड़ गयी । अिसका कारण यह भी हो सकता है कि वहाँ आलिमों

को जो अज़्जत मिलती थी उससे ज़्यादा अज़्जत उन्हें अंग्रेजी सरकारसे मिलने लगी हो ।

दाग

स. १८३१-

१६०५ अ.ी.

नवाब मिर्जा खाँ 'दाग' दिल्लीके रहनेवाले थे ।

६।७ बरसकी अुम्रमें अिनके हकीक़ी वालिदने

अिन्तकाल किया तो अिनकी माँने बहादुरशाह

के बेटे मिर्जा फ़ख़रोके साथ निकाह कर लिया जिससे यह भी लाल किलेमें जा पहुँचे । वहाँ शेर व सखुनका चर्चा सुनकर अिन्हें भी शायरीका शौक़ हुआ और यह 'जौक' के शागिर्द बन गये । खुशनवीसी और घुड़सवारीका अिन्हें बहुत शौक़ था । थोड़े ही असेंमें यह बहुत मशहूर हो गये । जिस वक़्त लखनऊमें अमीर साहब प्रसिद्ध हो रहे थे अुंसी वक़्त दिल्लीमें दागने शहरत पाना शुरू किया था ।

स० १८५७ अ.ी. के ग़दरमें यह दिल्ली छोड़कर रामपुर गये और नवाब क़लबअलीखाँ के मुसाहिब हुए । यहाँ अितनी अिज़्जत और आरामसे ज़िन्दगी गुज़री कि अुसे यह आरामपुर कहते थे । नवाबकी मौत हो जानेपर रामपुर छोड़कर यह हैदराबाद चले गये जहाँ अिनका बड़ा मान-सम्मान हुआ । यह निज़ामके अुस्ताद मुक़र्रर हुअे और अिन्हें माहवार पंद्रह सौ रुपये तनख़्वाह मिलने लगी । अितनी बड़ी अिज़्जत और तनख़्वाह शायद ही किसी शायरके नसीब हुआ होगी । अिनके वहाँ जाने पर शायरीका बाज़ार फिर गर्म हो गया । अुनकी हरदिलअज़ीजीने अुन्हें हज़ारों शागिर्द और दोस्त बहाल किये और वह बड़ी क़द्रकी निगाहोंसे देखे जाने लगे । यह तबीयतके निहायत खुश और मिज़ाजके बेहद रंगीं थे । अपने यार-दोस्तोंसे बड़ी मुहब्बत और मेहर-बानीसे पेश आते थे । अपने ज़मानेके शायरोंके साथ दोस्ताना ताल्लुकात रखते थे जो कि अुस ज़मानेके लिए बड़ी अचरज की बात थी । यह न किसीसे लड़े झगड़े न किसीकी हज़ो ही कही ।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़, सादा और सुलझी हुआ थी । बयानमें शोखी और बौकपन था । अिनकी तर्ज़ आम-पसन्द और दिलचस्प थी ।

डेढ़ हजारसे ज़्यादा शागिर्द असलाहके वास्ते कलाम मेज़ा करते थे, चुनांचे अस कामके लिए बाकायदा अक दफ़्तर खोला गया था ।

अिनका कलाम बहुत बड़ा और वसीअ है । असलमें वह अक बंधुत बड़े गज़ाल थे । क़सीदे, क़ितअे, रुबाअियाँ वगैरह भी अिनसे यादगार हैं पर अुनपर भी गज़ल का रंग जमा हुआ है । अिनके कलाममें कोअी खास ज़िद्द (नाविन्य) नहीं पायी जाती । तशबीहों और तमसीलोंमें ही नहीं बल्कि रुबाअियोंमें भी अदब व अिखलाक़के बजाय वही पुराने ढर्रेका आशिकाना रंग भलकता है । अिनकी तारीखें आला दर्जेकी मालूम होती हैं ।

जो हो, मीठी, सुरीली और आशिकाना शायरी के वह मुस्लिमअुस्स-बूत (प्रमाणित) अुस्ताद माने जाते हैं । पेचीदा तरकीबों और मोटे मोटे अजनबी अरबी-फारसी लफ़्ज़ोंको अिन्होंने अपने कलाममें जगह नहीं दी है जिससे वह आसान, मीठा और बेतकल्लुफ़ हो गया है । लफ़्ज़ सादे व मामूली, तरकीबें सीधी-सादी व दुरस्त, बंदिश चुस्त और शेर नपे-तुले, जोरदार और बाअसर होनेकी वजहसे अुनका रंग अुनके ज़मानेमें अस कद मक़्बूल हुआ कि अुनके सैकड़ों पैरव और नक़ल करनेवाले पैदा हुअे ।

हालाँकि अिनके कलाममें असलियत और फ़िलसफ़ा मुतलक़ नहीं है, फिर भी अुर्दू शायरीमें अिनका दर्जा बंधुत ऊँचा है । यह सही है कि अिनके माशूक अक्सर बाज़ारी होते हैं और अिनके बाज शेर भले कानोंके सुनने-लायक़ नहीं हैं । तशबीहें अिनकी बिल्कुल मामूली और पामाल (वरती हुआ) हैं जिनको सुनते सुनते कान थक़ गये हैं और दिल अूब गये हैं । मगर अिन सब बुराअियोंके होते हुए भी हमें यह कहना पड़ेगा कि वह ज़बानके बहुत बड़े ख़िदमतगार थे ।

अिनके कलामकी यह खासियत है कि अुससे आम लोग आसानीसे लुत्फ़ उठा सकते हैं मगर आलिमोंमें अुनकी ज़्यादा अिज़्ज़त नहीं हो सकती । अुनके मुकाबलेमें अमीरको पैसा और नाम बहुत कम मिला, फिर भी अमीरके सामने यह कुछ अदना दर्जेके मालूम होते हैं ।

अिनके चार दीवान मशहूर हैं । गुलज़ारे दाग़, आफ़ताबे दाग़, महताबे दाग़ और यादगारे दाग़ । अिन्होंने 'फ़रयादे दाग़' नामकी अक मसनवी भी लिखी है जिसमें अक वेश्याके अिशक़ा हाल है ।

अिनके शागिर्दोंमें आसफ़, अिकबाल, सायल, बेखुद, अहसन माहरवी
वगैरह बहुत मशहूर हैं ।

कलामका नमूना मुलाहिजा हो ।

वो दिल लेके चुपकेसे चलते हुअे ।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुअे ॥
न अितराअिये देर लगती है क्या ।
जमानेको करवट बदलते हुअे ॥
मुहब्बतमें नाकामियोंसे अखीर ।
बहुत काम देखे निकलते हुअे ॥
करे वादा पर वादा वो हमको क्या ।
ये चकमें ये फिकरे हैं चलते हुअे ॥
जरा दाग के दिल पै रक्खो तो हाथ ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुअे ॥

न पूछिये मेरे रोजे सियह की जुल्मत ।
चिराग लेके भी हूँदा तो आफ़ताब न था ॥

लोग कहते हैं बना दिल्ली बिगड़कर लखनऊ ।
पर कहाँ औ दाग़ अस अुजड़े हुअे गुलका जवाब ॥

अिस जमानेके और भी बहुतसे शायर मशहूर हैं । मसलन् नवाब
महबूब अली ख़ाँ 'आसफ़', महाराजा चंदूलाल 'शादौ,' 'बाकी,' 'शाद,'
'अुस्मान,' वगैरह ।

अिसी जमानेमें हैदराबादमें अंजुमने तरक्की अे अुर्दू और अुस्मानिया
युनिवर्सिटीकी भी बुनियादेँ डाली गयीं । यह दोनों अंजुमनेँ आजकल अपनी
पुरबहारमें हैं । अुर्दू ज़बानकी तरक्कीमें अिनका बहुत बड़ा हाथ है । युनिव-
र्सिटीकी किताबें बनानेके लिये दारुलसनीफ़ और दारुलतर्जुमा नामकी दो
अंजुमनेँ और बनायी गयी हैं जहाँसे दरसी किताबें और अिस्तिलाहें निक-

लती रहती हैं। उर्दू लिपिमें सुधार करनेके लिये कमिटियां बनायी गयी हैं जो बड़ी मेहनतके साथ काम कर रही हैं।

अंजुमनकी तरफसे छःमाही रिसाला 'उर्दू,' माहवार रिसाला 'सायन्स' और पन्द्रह रोजा अखबार 'हमारी ज़बान' निकलता है जिसमें बड़े अहम और दिलचस्प मज़मून आते हैं। अिसके सेक्रेटरी मौलवी अब्दुल हक हैं जो बहुत ही परिश्रमी व्यक्ति हैं।

नयी रोशनीका जमाना

तमहीदः

अंग्रेजी सल्तनत यहाँ अच्छी तरह जम गयी जिससे लोगोंके दिमागमें नयी रोशनी फैल गयी । अंग्रेजी तालीम वैसे तो आम हो रही थी मगर अश्वलमें उससे तो अुन्हीं लोगोंने ज्यादा फायदा झुठाया जो पहलेसे ही पढ़े लिखे कहे जाते थे । बहुत-सी सल्तनतें और अमीर अुमरा मिट गये; जो बाकी बचे अुनके सामने शेर व शायरीसे ज्यादा जरूरी सवाल पैदा होने लगे । रियासतोंको मजबूर हो कर अपनी रिआयाकी ओर ध्यान देना पड़ा और अमीरोंको फिक्र होने लगी कि अपनी अपनी अमीरी और जायदादकी हिफाजत कैसे होगी । असलिये वह जमाना अब जाता रहा जब किसी भी अैरे-गैरे सुस्त और काहिल शायरको दो चार शेर कहनेपर सैकड़ों अशर्फियाँ आसानीसे मिल जाती थीं । अब शायरीका धंधा बैठ गया । किसी और कामसे पहले पेटकी पूजाकी फिक्र सवार होती फिर शेर व शायरीका खयाल !

खुद जबानमें भी काफी तच्चीलियाँ हो रही थीं । मर्सियानिगारोंने और नजीर अकबराबादीने नये रंगके वास्ते रास्ता तैयार कर दिया था । हालाँकि अुस जमानेके लोगोंने नजीरके रंगको कद्रकी निगाहसे न देखकर अेक फिजूल और हेच चीज समझा मगर जमानेके अिन्कलाबके सामने अुनकी राय फ़ीकी पड़ गयी । अब लोगोंको पुराने रंगमें लुत्फ नहीं आता था हालाँकि पुराने शायरोंकी कद्रदानीमें किसी तरहकी कमी नहीं आयी । सिर्फ शायरीका दायरा विस्तृत होता गया । लोग चाहते थे कि पुराना रंग भी रहे मगर बनावटीपन और तकल्लुफसे खाली होकर । असलिये नये नये

विषय और मजमून ज्यादा मकबूल होने लगे । गजले कम होती गयीं और मुसद्द व मसनवीको अधिक लोकप्रियता मिलने लगी । जिससे पहले अर्द्धमें कुदरती मजमूनोंका दायरा बहुत तंग था सो अब बढ़ने लगा । खयाली, बयानिया, तारीखी और नसीहतसे भरी हुआ नज्में नये नये लिबास पहन कर जनताके सामने आयीं । यह कहना बेजा न होगा कि यह सब तब्दीलियाँ अंग्रेजी ज़बानके मताले (अध्ययन) से वजूदमें आयीं । ब्लैक वर्सके ढंगकी चंद अंग्रेजी बहरोनेमी ज़बानमें जगह पानेकी कोशिश की मगर जिसको पब्लिकने पसंद नहीं किया । मौ. अजमतुल्ला साहबने हिन्दी दोहरों और लफ्ज़ोंको अपनाया जिससे उनका कलाम दिलकश और बामज़ा मालूम होने लगा । हालीने मुसद्दसका दर्जा ऊँचा करके उसे गजलकी मकबूलियत बख्शी ।

अंग्रेजी तालीमके असरने अर्द्ध ज़बानको क़दामत-परस्ती (प्राचीनताकी पूजा) की जंजीरोंसे आज़ाद किया । नये खयाल और लफ्ज़ ज़बानमें शरीक हो गये । मुबालगेसे भरी हुआ बातें छोड़ दी गयीं और सादगी, सफाई, असलियत वगैरह गुण क़ीमती समझे जाने लगे ।

लेकिन जिसके यह मानी नहीं कि जिस वक्त्रकी हरेक चीज़ अच्छी ही थी । हरगिज़ नहीं । ज़मानेकी कुछ बुराियाँ भी ज़बानमें आ गयीं । मसलन मुकर्रर किये हुये अरूज़ (पिंगल) के क़वायदके बारेमें लापरवाहीकी जाती थी साथ ही अंग्रेजी शब्दोंकी भरमार होने लगी । काबिल और नाकाबिल हर किस्मके मजमूनको शेरके ढाँचेमें ढाला जाने लगा ।

फिर भी हमको मानना पड़ेगा कि नुकसानोंसे फायदे ही ज्यादा हुये ।

जिस ज़मानेमें शायरोंकी क़मी किस्में हो गयीं । इनमेंसे तीन तो बिल्कुल साफ़ साफ़ नज़र आती हैं । अक़ तो वह हैं जो अब भी उसी पुरानी लकीर के क़त्तीर बनकर चलते रहे; मौजूदा ज़मानेको भूलकर जो उसी खयाली दुनियाँमें विहार करते रहे । दूसरे वह हैं जो हर अक़ मगरिबी चीज़के आशिक और चाहने वाले थे । पुराने तौर-तरीकोंको, हिकारतकी नज़रसे देखना और भदे भदे तर्ज़में तैयार करना उनका खास काम रहा । तीसरी किस्म उन

शायरोंकी है जो मध्यम मार्गी हैं। यह पुराने और नये दोनों रंगोंको अिज़्जत की निगाहसे देखते हैं। दोनों तर्जोंकी अच्छी अच्छी सिफ़तोंको मिलाकर अिन्होंने अपनी अेक निराली तर्ज निकाली जो आम व खासमें मक़बूल हो गयी। अिनमें मौलिकता काफ़ी मात्रामें पायी जाती है।

पहले दो ढाँचोंके शायरोंसे तो हमें ज़्यादा सरोकार नहीं है, अिसलिये कि उनकी तादाद बहुत कम है और उनमें अैसे कोअी बड़े शायर नहीं हुअे जिनका नाम आसानीसे ज़बानपर आ सके। चुनौचे हम तीसरी क्रिस्मके शायरोंपर ही ज़्यादातर ध्यान देना चाहते हैं। अिनमें आज़ाद, हाली, शरर, सहर, अिकबाल, अकबर, वगैरह बहुत मशहूर हैं।

आज़ाद

मृत्यु

शम्मुलअुलमा मौ. मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' नये

स. १९१० श्री. ज़मानेके बहुत बड़े अदीब, मशहूर नस्सार (नस्स यानी गय लिखने वाले), नामी गरामी पारखी, और तालीमके फ़नके बहुत बड़े माहिर तथा अेक मशहूर व मारुफ़ (प्रसिद्ध) अख़बार-नवीस थे। यह दिल्लीके रहने वाले थे। अिनके वालिद ज़ौकके दोस्त थे जिससे यह ज़ौकके शागिद बन गये। बादमें अिन्होंने 'अैश' को अपना अुस्ताद बनाया। पंजाबके तालीमी महकमेके डाअिरेक्टर हालराअिडकी मददसे अिन्होंने 'अंजुमने पंजाब नामकी अेक संस्थाकी वुनियाद डाली जिसका मक़सद अुर्दू शायरीमें नयी रोशनी फैलाना था। अिस अंजुमनके जो सदस्य होते वह अपनी शायरीमेंसे मुबालगे, तशबीहें, तमसीलें वगैरहकी बेढंगी भरमारको निकाल देते, अितना ही नहीं बल्कि काफ़ियों और रदीकोंपर भी बिलकुल ध्यान न देते थे।

आज़ादने अपनी दो मसनवियों 'नज़्मे आज़ाद' और 'शबेक़द' अिस अंजुमनमें पढ़ी जिनकी अुस वक़्त बड़ी तारीफ़ हुअी। वह अंजुमन अगर ज़्यादा अरसे तक चलती रहती तो अुससे ज़बानको बहुत फ़ायदा पहुँचता, मगर बदक्रिस्मतीसे अैसा न हो सका। पुराने ख़यालके लोगोंके हठके कारण वह बंद पड़ गयी। 'मार्क़त अिलाही' 'शराफ़त हकीकी' वगैरह कुछ नज़्में अिन्होंने अंग्रेजी ढंगपर भी लिखी हैं। अिनके शुरू शुरूके कलाममें 'हुबबेवतन'

‘स्वाबे अमन’ ‘सुबहे अुम्मीद’ वगैरह पुराने ढंगकी मसनवियाँ मिलती हैं ।

लेकिन आज़ाद असलमें शायरीके अुतने प्रेमी नहीं थे । उनकी तबीयत आलिमाना थी, असलिये अुन्हें शायरीसे कोअी खास मुहब्बत न थी । नज़्म-की बनिस्बत वह नसरको ज़्यादा जरूरी और महत्त्वकी समझते थे । और नसरमें अिन्होंने अच्छी तबियत-आज़माअी की । यहाँ तक कि हालके ज़मानेके नस्सारीके वह अुस्ताद माने जाते हैं ।

अिनकी ज़बान साफ़, आसान, दिलकश और बड़ी मजेदार है ।

कलामका नमूना देखिये :---

हम अुनसे दूर ब-ज़ाहिर हज़ार बैठे हैं ।

य’ लाख जानसे दिलमें निसार बैठे हैं ।

अिधर भी चश्मे अिनायत हो ज़रा अै साक़ी ।

कि मस्त देरसे अुम्मीदबार बैठे हैं ॥

निगाहे नाज़का साक़ीके अेक है य’ कमाल ।

कि बज़्म हो गयी मदहोश वो यार बैठे हैं ॥

कमान अ़ब्रूअे जानाँके दिलसे हूँ कुर्बा ।

कि जितने तीर हैं सीनेके पार बैठे हैं ॥

तुम्हारे जुल्फ़को थे बाँधते परीशाँ हम ।

सो दामन आज लिये तार तार बैठे हैं ॥

अमामा शेख़का छोड़ेंगे क्या भला वो रिन्द ।

जो अपनी पगड़ीको पहले अुतार बैठे हैं ॥

किमारे अिश्कमें अब क्या लगायेंगे आज़ाद ।

कि नक़द दिल तो पहले ही हार बैठे हैं ॥

—*:*—

हुआ लैला प’ मजनूँ कोहकन शीरी प’ सौदाअी ।

मुहब्बत दिलका अिक सौदा है जिसकी जिससे बन आयी ॥

—*:*—

हाली

स. १८३७—

शम्सुलअलमा ख्वाजा अल्ताफ हुसेन

१९१४ आ.

‘हाली’ पानीपतके रहनेवाले थे ।

देहातमें रहनेकी वजहसे अिनकी तालीम सिलसिलेवार न हो सकी । यह बारबार दिल्ली भाग जाते और घरवाले फिर फिर पकड़ ले जाते । अिस-लिये वहीं घरपर रहकर अुन्हें मशक करनी पड़ी । कुछ दिनों बाद वह जहाँ-गीराबादके मुस्तफाखाँ ‘शेफ़ता’ की मुलाजिमत करने लगे जिससे अिन्हें अपनी मशकमें काफ़ी फ़ायदा पहुँचा । यहाँसे वह लाहौर चले गये जहाँ अुन्हें गवमेंट बुकडेपोमें अुर्दू तर्जुमोंकी अिबारत देखनेका काम मिल गया । यह काम करते हुअे अुन्हें अंग्रेज़ी ज़बान, खयाल और अुन्हें अदा करनेकी तर्ज़से अेक ख़ास लगाव पैदा हुआ जिसका असर अुनके कलामपर पूरी तरह पड़ा हुआ दिखाअी देता है ।

हाली निहायत खलीक़ (सुशील) मिलनसार, हलीमुत्तबअ (सहन-शील) और क़ौमसे सच्ची मुहब्बत करनेवाले शाख़्स थे । क़ौमी हमदर्दी अुनमें कूटकूट कर भरी थी । हालीसे पहले नज़ीरको छोड़कर दूसरे शायरोंने ज़बानकी भले ही चाहे जितनी ख़िदमत की हो, मगर अुससे क़ौमको शायद ही कोअी ठोस फ़ायदा पहुँचा हो । हालीही वह पहले कवि हैं जिनके दिलने क़ौमकी दर्दीली आवाज़ मुनी । फ़िरकावाराना भगड़ोंसे वह हमेशा दूर रहे । मिर्ज़ा ‘ग़ालिब’ के यह सबसे नामवर शागिर्द हैं । ‘अंजुमने पंजाब’ में यह भी शरीक थे । यहाँ अिन्होंने ‘बरखास्त’ ‘निशाते अुम्मीद’ ‘हुब्बे-वतन’ वगैरह नज़में पढ़ीं जिससे यह बहुत जल्द मशहूर हो गये ।

हाली साहबपर सर सैयद अहमद का बहुत बड़ा असर था । वह सर साहबके बराबर आख़िरतक हामी रहे । अेक बड़े अरसे तक वह अली-गढ़ युनिवर्सिटीके ट्रस्टी भी रहे । सर साहबके कहनेसे हालीने ‘मुसद्दसे हाली’ नामकी अेक मसनवी लिखी । अुर्दू ज़बानमें यह सबसे ज़्यादा मशहूर और मक़वूल तसनीफ़ समझी जाती है । अिस मसनवीने अुर्दू शायरीमें अेक नया दौर शुरू किया । अिसके बाद अुर्दूमें क़ौमी और वतनी नज़में कसरतसे

खिखी जाने लगीं । मुसलिम समाजको गहरी नींदसे जगाकर कार्यप्रवृत्त करानेका काम अिस मुसद्दसने किया । अुर्दू जाननेवाले मुसलमानोंमें शायद ही अैसा कोअी होगा जिसने मुसद्दसको बड़े चावसे न पढ़ा हो । हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि गुप्तजीकी 'भारत भारती' को जो स्थान मिला है वही स्थान अुर्दूमें 'मुसद्दसे हाली' को प्राप्त है । अिस मुसद्दसने हालीको अेकदम अेक अूँचा कौमी शायर बना दिया ।

अिनकी 'मुनाजाते बेवा' और 'चुपकी दाद' मसनवियाँ भी बहुत ही मशहूर हैं । वैसे तो अिनकी सभी मसनवियाँ खूब मकबूल हो गयीं क्योँकि अुनकी ज़बान निहायत आसान, बेतकल्लुफ़, और साफ़ है और बात कहनेका ढंग बिलकुल नैचरल है । अिन्होंने मर्सिये भी बहुत अच्छे कहे हैं । सबसे पहले अिन्होंने गज़ल और कसीदेमें नया रंग शामिल किया । अिबारतको बनावटीपनसे पाक किया और आनेवालोंके लिये रास्तेको साफ़ कर दिया । दर्द व असर तो अिनमें भरा हुआ है ।

अेक ख़ामी अिनमें ज़रूर रही है और वह यह कि कहीं कहीं वह पिंगलके कायदाँसे बाहर निकल गये हैं । लफ़्ज़ोंकी सेहत और मुहावरोंकी शुद्धिा ख़याल अुन्हें कम रहता है । कभी कभी अनोखे अंग्रेजी शब्दोंका भी अिस्तेमाल यह कर जाते हैं जिससे रसमें भंग होनेका डर रहता है । फिर भी यह तो माननाही पड़ेगा कि वह अेक बहुत अूँचे दर्जेके शायर थे । कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअिये :—

जागनेवलो गाफ़िलोंको जगाओ । तैरनेवाले डूबतोंको तिराओ ॥
तुम अंगर हाथ पाँव रखते हो । लँगड़े लूँलोंको कुछ सहारा दो ॥
तन्दुरुस्तीका शुक्र क्या है बताओ । रंज बीमार भाअियोंका बैँटाओ ॥
तुम अंगर चाहते हो मुल्ककी ख़ैर । न किसी हमवतनको समझो ग़ैर ॥
हो मुसलमाँ अिसमें या हिन्दू । बौध मजहब हो या कि हो ब्रह्म ॥
सबको मीठी निगाहसे देखो । समझो आँखोंकी पुतलियाँ सबको ॥

*

*

*

मरने व' मेरे वह रोज़ोशब रोयेंगे ।

जब याद करेंगे मुझे तब रोयेंगे ॥

अलफ़त पै, बफ़ा पै, जाँ-निसारी प' मेरी ।
 आगे नहीं रोये थे तो अब रोयेंगे ॥
 पर उस क़ौमे ग़ाफ़िलकी ग़ाफ़लत वही है ।
 तनज़ुल प' अपनी क़नाअत वही है ॥
 मिले खाकमें पर रअूनत वही है ।
 हुआ सुबह और ख़्वाबे राहत वही है ॥

न अफ़सोस अन्हें अपनी ज़िल्लत प' है कुछ ।

न रश्क और क़ौमोंकी अिज़ज़त प' है कुछ ॥

बहायमकी और अुनकी हालत है यक-साँ ।

कि जिस हालमें हैं अुसीमें हैं शादाँ ॥

न ज़िल्लतसे नफ़रत न अिज़ज़तका अरमाँ ।

न दोज़ख़से तरसाँ न जन्नतके ख़्वाहाँ ॥

लिया अक़ल व दींसे न कुछ काम अन्होंने ।

क्रिया दीने बरहक़ को बदनाम अन्होंने ॥

सुरूर

स. १८७६ — मुन्शी दुर्गा सहाय 'सुरूर' जहाँनाबादके

१९१० अ. रहनेवाले थे । अिनकी ज़िन्दगी मुसीबतोंसे

भरी हुआ थी । यह आज़ाद मिज़ाज़ और मस्त थे । मज़हबी बातोंमें ये बिलकुल लापरवाह थे । अिनके कलाममें अिन चीज़ोंकी भड़कीली तस्वीरें नज़र आती हैं । मैनुशी (मद्यपान) की शिद्दतकी वजहसे अिनकी ज़िन्दगीका वक़्तसे बहुत पहले ख़ात्मा हो गया । लेकिन अितनी छोटीसी अुम्रमें अिन्होंने जो नाम और शुहरत हासिल की वह बड़े बड़े बूढ़ोंको भी नसीब न हुआ । अुनके रहने सहनेके ढंगसे ही मालूम होता था कि वह अेक हकीक़ी शायर हैं ।

अिनकी शायरीमें पुराने और नये दोनों रंग मौजूद हैं । बल्कि यह कहना बजा होगा कि अिन दोनों तर्ज़ोंकी अच्छी अच्छी बातोंको मिला कर

अिन्होंने अपनी अेक नयी तर्ज अीजाद की । अिनके कलाममें लफ्जोंकी सफाअी, बलन्द खयाली, और पाक़ीज़गी सब मिली हुआी हैं ।

मीर तक़ी 'मीर' की तरह अिनमें भी गहरे भाव, दर्द और असर कूटकूटकर भरे हुआे हैं । अिनका देश-प्रेम भी काफ़ी आला दर्जेका है । हिन्दुस्तानके हिन्दुस्तानी क़ौमी शायरोंमें अिनका मर्तबा बहुत ऊँचा है । किसी खास जमायत या फ़िरक़ेकी तरफ़दारी अिन्होंने नहीं की । अिनकी वतनी नज़्मोंमें सच्चा जोश और आला खयाल कसरतसे हैं । अिनकी आशि-क्राना नज़्में भी बहुत मक़बूल हैं । अिनकी तारीख़ी और मज़हबी नज़्में तों अुर्दू शायरीमें बिलकुल बेजोब हैं ।

अिनकी अेक खासियत यह है कि अपने अुर्दू शेरोंमें अिन्होंने हिन्दी लफ्जोंको बड़ी खूबीसे खपाया जिससे शेरके हुस्नमें अचछा अिजाफ़ा हुआ । पुराने और नये ठेठ हिन्दीके शब्द अिन्होंने अैसी अुस्तादीके साथ बरते हैं कि देखते ही बनाता है । अिसके कारण अिनकी ज़बान निहायत प्यारी और मीठी बन गयी है

अिनकी मशहूर तसनीक़ें यह हैं :—

दीवारे कुहन, हसरते शबाब, खाके वतन, यादे वतन,
नलदमयंती, नूरजहाँ, पदमिनी, शमा व परवाना, वगैरह ।

अंग्रेज़ी नज़्मोंके तर्जुमें भी अिन्होंने किये हैं । अिनका कलाम 'खुमख़ाना अे सुरूर' और 'जामे सुरूर' नामकी दो जिल्दोंमें अिकठ्ठा किया गया है ।

अिनका बहुत-सा कलाम जाया हुआ और बहुत-सा लोगोंने हथिया लिया ।

कलामका नमूना देखिये ---

जारी रहेगा यूँ ही तू ओ वतनके चदमे ।
अन्दाज़ खुश ख़रामी हरगिज य' कम न होंगे ॥
अै ग़मगुसार तिफ़ली ! लेकिन य' ग़म है मुफ़्फ़ो ।
साहिल प' आह ! तेरे अपने क़दम न होंगे ॥
हिलती रहेंगी यूँ ही फूलोंकी तेरे बेलें ।
भोंके नसीमके यह क्या सुबह-दम न होंगे ?

तैरा करेंगे यूँ ही मुर्गाबियोंके जोड़े ।
 साहिल प' आह तेरे अपने कदम न होंगे ॥
 खेला करेगी तुझसे सूरजकी किरनें दिन में ।
 क्या शबको चाँदनीके सामँ बहमन होंगे ?
 रौनक यही रहेगी तेरी वतनके चदमे ।
 साहिल प' आह ! तेरे अपने कदमन होंगे ॥
 (चश्माञ्चे वतन)



अध्याय बारहवाँ

कलके शायर

असि अखिरी अध्यायमें हम अुन दो-तीन चुने हुए शायरोंका जिक्र करनेवाले हैं जो अब असि दुनियामें शरीरसे नहीं रहे हैं लेकिन जिनकी ज़बानकी ख़ितमतेँ दुनियाके अन्त तक हमेशा याद रहनेवाली हैं । ये तीन शायर हैं--'अकबर' अिलाहाबादी, चकबस्त, और अक़बाँल । तीनों अपने अपने ढंगके बेजोड़ और बेनज़ीर हैं । अिनकी बराबरी करनेवाला अब तक कोअी नहीं हुआ है । यह ज़माना बीसवीं सदीका पहला हिस्सा है । बैसे तो असि ज़मानेमें दूसरे बहुतसे बड़े बड़े शायर गुज़रे हैं मगर अिन तीनोंकी बात कुछ और ही है ।

अकबर

स. १८४३-१९२१ अी. सैयद अकबर हुसेन रिज़्वी, 'अकबर' बारा, ज़िला अिलाहाबादके रहनेवाले थे । अपने

पुराने ढंगके वालिदका असर अिनपर बहुत पड़ा था जिससे ज़िन्दगीमें यह खुद कभी ज़नबूझकर मज़हबके ख़िलाफ़ नहीं गये और औरोंको भी वैसा करनेसे रोकते रहे । वह जानते थे कि नयी रोशनीने देशवालोंकी आँखोंको चका-चौंध कर दिया है और अगर अुन्हें होशमें लाकर सच्चे रास्ते पर ले जाना है तो तीखे और कड़वे लफ़्ज़ोंसे काम नहीं चलेगा । असलिए अुन्होंने हँसी-मज़ाक़ और चुक़बुलेपनके रास्तेको पसन्द किया और अुसपर अन्त तक चलते रहे । अुनका यह रास्ता अितना मुश्किल था कि हजार कोशिश करने पर भी अुनके बाद दूसरा कोअी भी शख्स अुसपर न चल सका और वह अपने ढंगके अेक ही रह गये ।

अकबर अपने ज़मानेकी अेक बहुत बड़ी हस्ती थे । अेक बेमिसाल शायर

होनेके अलावा वह एक अच्छे नासिह (उपदेशक) और सूफ़ी भी थे । नज़्म और नस्र दोनोंमें अُنको अच्छा क़माल हासिल था । मज़ाक़ व ज़राफ़त-के अलावा तहज़ीब, सचाबी, हमदर्दी और मेहमाननवाज़ी अُنके खास जौहर थे । मज़हबी झगड़ों और तास्सुबोंसे यह कोसों दूर रहते थे अिसलिये अिनके दोस्तोंमें क़ाबि हिन्दू भी थे ।

यह अरबी, फ़ारसी और अंग्रेज़ीसे अच्छी तरह वाक्किफ़ थे । अिनके अेक ख़तसे मालूम होता है कि यह हिन्दी भी सीखना चाहते थे मगर न सीख पाये । शुरू शुरूमें यह 'आतिश' के शार्गिर्द थे मगर बादमें गुलाम हुसैन 'वहीद' को क़लाम दिखलाने लगे । अिनके क़लामको पाँच हिस्सोंमें बाँटा जाता है जिन्हें पाँच दोरोंका नमूना कहते हैं । अिन दौरोंसे यह भी मालूम हो जाता है कि अुम्रके बढ़नेके साथ साथ अिनके क़लाममें कैसी कैसी तरक्क़ी और तब्दीली होती गयी । यह दौर अिस प्रकार हैं:-

पहला दौर

यह अिब्तदाअी दौर है । अिसमें पुराना रंग भरा स. १८६६ अी. तक हुआ है । नौसिखुवेपनका ज़माना था । अिसलिये दिल्ली और लखनऊके बड़े बड़े शायरोंकी नक़ल की गयी । कुछ बनावदीपन भी मौजूद है । मगर सफ़ाअी सादगी वग़ैरह गुण भी कम नहीं हैं ।

दूसरा दौर

असलियत और सचाबी क़लाममें ज़्यादा पायी जाती है । पुराने ढंगके मज़मून और दक्कियानूसी ख़याल कम होते हैं । बनावटके बदले बेतकल्लुफ़ी और दिलचस्पी आने लगती है ।

तीसरा दौर

यह बड़ी तरक्क़ीका ज़माना है । अब अिनको स. १९०८ अी. तक ज़बान और क़लाम पर पूरी कुदरत हासिल हो जाती है । हिम्मत और अेतबारके साथ रास्ता तय करते हुअे मालूम पड़ते हैं । न कहीं टटोलते हैं न ठिठकते हैं । तन्ज़ (व्यंग) से भी क़लाम अच्छी तरह परिचित होता जाता है । ग़ज़लों का रंग अधिकधिक अिखलाक़ी (सांस्कृतिक) होता जाता है और क़लाममें रूहानियत और तसव्वुफ़ की चाशनी पड़ने लगती है ।

चौथा दौर

यह भी तरक्कीका जमाना है। खयालोंको जाहिर स. १९१२ श्री. तक करनेके तरीके अब श्रीजाद हो गये। आशिकाना रंग तेजीसे घटता जाता है और अखलाक़ी, रूहानी और फिलसफ़ाना रंगका जोर बढ़ता जाता है।

पाँचवाँ दौर

आशिकाना रंग बिलकुल घट गया। रूहानी और स. १९२१ श्री. तक अखलाक़ी रंगके साथ साथ सयासी (राजनैतिक) रंगने भी जोर पकड़ा। सयासी रंगका जोर सबसे ज़्यादा रहा। च्यूँकि यह सरकारी पेन्शनर थे, असलिये अुन्होंने अपनी सयासी नज़्मोंको जाहिर नहीं किया। अुध्रके आखिरी दिन थे, मौतकी काली घटाअें छा रही थीं, रिश्तेदारों और दोस्तों की मौतें हुअी थीं असलिये अिस दौरकी शायरीमें अेक दर्द, अेक टीस भरी हुअी है।

अिनके कलामका मक़सद सिर्फ़ मज़ाक़ या ज़राफ़त नहीं बल्कि हकीक़तोंकी तालीम था। अिनकी तशबीहें और मिसालें बिलकुल नयी और मजेदार हैं क्यूँकि यह अुन्होंने चीज़ोंका जिक़र करते हैं जिनको हर शख़्स देखता और जानता है। अिनन्होंने ज़राफ़त पैदा करनेके लिये अलग अलग ज़बानोंके—मसलन अंग्रेज़ी हिन्दी वगैरहके नये नये, अनोखे और मजेदार शब्दोंका अिस्तेमाल किया है। ज़राफ़त पैदा करनेका अेक और भी तरीक़ा अुन्होंने श्रीजाद किया। वह यह कि मामूली शब्दोंका बिलकुल अनोखे ढंगसे प्रयोग करना।

अकबरकी ज़राफ़तको महज़ मसख़रापन नहीं समझना चाहिये। अुसकी तहमें निहायत गहरे और तालीम देनेवाले मानी होते हैं। और कोअी न कोअी हकीक़त चाहे वह अखलाक़ी हो या तालीमी, सयासी हो या मज़हबी, अदबी हो या रूहानी हमेशा छिपी हुअी रहती है। अिनके तीन कुल्लियात और अेक ख़तोंका संग्रह शाया हुअा है।

दौर पहला पूछता है जब कोअी अुनसे किसे है तुमसे अिशक़।

देखते हैं प्यारसे शरमाके अकबरकी तरफ़ ॥

दौर दूसरा मौतसे डरते हैं अब पहले य' तालीम न थी।

कुछ नहीं आता था अज़्लाहसे डरनेके सिवा ॥

दौर तीसरा अजलसे वह डरै जीनेको जो अच्छा समझते हैं ।
 यहाँ हम चार दिनकी ज़िन्दगीको क्या समझते हैं ॥

दौर चौथा चल बसें याराने हमदम झुठ गये प्यारे रफ़ीक़ ।
 फ़िक्र कर अक़बाकी कुछ अक़बरकी दुनिया हो चुकी ॥

दौर पाँचवाँ मदख़ूलये गवर्नमेंट अक़बर अगर न होता ।
 अिसको भी आप पाते गांधीकी गोपियोंमें ॥

—*—

लन्दनको छोड़ लडके अब हिन्दकी खबर ले ।
 बनती रहेंगी बातें आबाद घर तो कर ले ॥

राह अपनी अब बदल दे बस 'पास' करके चल दे ।
 अपने वतनका रखकर औ रखसते सफ़र ले ॥

अंगलिशकी करके कापी दुनियाकी राह नापी ।
 दीनी तरीक़में भी अपने क़दमको धर ले ॥

वापस नहीं जो आता क्या मुन्तज़िर है अिसका ।
 माँ खस्ता हाल हो ले, बेचारा बाप मर ले ॥

मग़रिबके मुशिदोंसे तू पढ़ चुका बहुत कुछ ।
 पीराने मशरिफ़ीसे अब फ़ैज़की नज़र ले ॥

मैं भी हूँ अेक सखुनवर आ सुन कलामे अक़बर
 अिन मोतियोंसे आकर दामनको अपने भर ले ॥

चकबस्त

पं० ब्रजनारायण चकबस्तका जन्म फ़ैज़ाबादमें स० १८८२-१९२६ अी. हुआ था और अुन्होंने लखनअूममें तालीम हासिल की थी । वकालत भी यहीं शुरू की । अिन्हें तख़ल्लुस करना पसन्द नहीं था अिसलिये अिन्होंने अपने असली नामसे ही शायरी की । चकबस्त तो अिनके ख़ान्दानका नाम था । पुराने रस्मके मुआफ़ि़क़ वह किसीके शगिर्द भी न बने । अिन्होंने अेक माहवार रिसाला 'सुबहे अुम्मीद' के नामसे

स० १९१८ औ० में जारी किया था जो अदबी दुनियामें बहुत आदरके समझा जाता था ।

अिनकी छोटी छोटी नज़में अक्सर गजलें ही होती थीं मगर अं गजलगोकी हैसियतसे चकबस्त पुराने, अेक ही ढरेंके, रंगसे बिलकु अलाहिदा रहना चाहते थे, और अिसीलिए वह नये जमानेके अेक मशालीडर बन गये । अिनकी बड़ी बड़ी नज़में मुसद्दसकी शकलमें हुआ कर थीं । अिनके पाँच अलग अलग हिस्से किये जा सकते हैं:—(१) मर्सि (२) कौमी नज़में (३) सोशल नज़में (४) मजहबी नज़में (५) नैचरल नज़में ।

अिनके मर्सिये जो कि मुल्कके जाननिसार लीडरों और आजादीके लि कुर्बान होनेवाले बहादुरों—मसलन् गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, बिशननारायण दर वगैरहकी मृत्युपर अिनके कलमसे निकले पं० पुरजोर, दर्दसे भरे हुअे और दिलपर कभी न मिटनेवाली छाप डालनेवा हैं । जोश और असरमें यह पूरी तरह डूबे हुअे मालूम होते हैं । कौमी और राजनीतिक नज़मोंमें भी वह सभी गुण हैं जो मर्सियोंमें पाये जाते हैं गांधीजी, अँनीबेजंट, काँग्रेस वगैरहपर अिनकी नज़में बहुत ही ऊँचे दर्जे हैं । सोशल नज़में भी अच्छी हैं । ‘फूलमाला’ और ‘बर्क अिसला’ यह दो नैचरल नज़में बहुत ही आला दर्जेकी हैं । अिनके कलाममें पुरा ढंगकी तशबीहें और तमसीलें मुतलक नहीं मिलतीं ।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़, शुद्ध, और मीठी है । लफ़्ज़ हमेश बहुतही मुनासिब, रोज़मर्रा बोलचालके और ज़ोरदार होते हैं । अिन कलाममें बेहतरीन किस्म और आला दर्जेका लखनअूका रंग भरा हुआ है अिनकी अेक खुसूसियत यह भी है कि यह अपने कलाममें मुनासिब हिन् लफ़्ज़ बेमालूम मिलाकर उसकी शीरीनी और असरको दोबाला (दूना कर देते हैं ।

अंग्रेजी तालीमयाफ़ता होनेकी वजहसे पूरबी और पश्चिमी दोनों ढंगों खूबियोंसे वह आगाह रहते थे अिसलिये अिनकी रायें अदबी मामलोंमें बहु ज़म्मीली, मुन्सफ़ाना, और गैरजानिबदार (पक्षपात रहित) होती थीं

और और अर्दू शायरोंकी तरह यह कभी ज़ाती हमलोंकी कीचड़में नहीं फँसे । नसरमें भी नज़्मकी तरह अिनका पाया बहुत बलन्द था ।

कलामका नमूना देखिये:—

किस वास्ते जुस्तजू करूँ शोहरत की ।
अेक दिन खुद हूँद लेगी शोहरत मुझ को ॥

—••—

हुअे क़फ़ससे रिहा भी तो किस मुसीबत में ।
अँधेरी रात है और आशियाँ नहीं मिलता ॥

—*—

वतनपरस्त शहीदोंकी खाक लायेंगे ।
हम अपनी आँखका सुर्मा अुसे बनायेंगे ॥
गरीब माँके लिये दर्द दुख उठायेंगे ।
यही पयामे वफ़ा कौमको सुनायेंगे ॥
तलब फ़िज़ूल है काँटेकी फूलके बदले ।
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले ॥ १ ॥

हमारे वास्ते जंजीर तौक़ गहना है ।
वफ़ाके शौक़में गाँधीने जिसको पहना है ॥
समझ लिया कि हमें रंजो दर्द सहना है ।
मगर जबाँसे कहेंगे वही जो कहना है ॥
तलब फ़िज़ूल है काँटेकी फूलके बदले ।
न लें बहिश्तभी हम होमरूलके बदले ॥ २ ॥

जबाँको बन्द किया है यह गाफ़िलोंको है नाज़ ।
जरा रगोंमें लहूका भी देख लें अंदाज़ ॥
रहेगा जानके हमराह दिलका सोज़ गुदाज़ ।
चितासे आयगी मरनेके बाद आवाज़ ॥
तलब.....बदले ॥ ३ ॥

—

पिन्हानेवाले अगर बेडियौं पिन्हायेंगे ।
 खुशीसे कैदके गोशेको हम बसायेंगे ॥
 जो संतरी दरे जिन्दोंके सो भी जायेंगे ।
 यह राग गाके अन्हें नींदसे जगायेंगे ॥

--(:०:)--

अक़बाल

स० १८७५ डाक्टर सर शेख मुहम्मद 'अक़बाल' सियालकोट
 १९३६ श्री. (पंजाब) के रहनेवाले थे । वहाँ अन्होंने तालीम
 हासिल की और लाहौरके गवर्नमेंट कालेजमें प्रोफेसरी करने लगे । यहाँ काम
 करते वक्त अिनकी मुलाकात अलीगढ़ युनिवर्सिटीके प्रोफेसर मि० आर्नाल्डसे
 हुआ जिन्का असर अक़बालकी जिन्दगी भरमें पाया जाता है । कुछ दिन
 पढ़ानेका काम करनेके बाद शेखसाहब अँची तालीम पानेकी गरजसे स० १९०५
 श्री. में अंग्लिस्तान रवाना हुअे । वहाँ अेथिक्स (अख़लाक़ियत) में डिग्री
 हासिल करके वह जर्मनी चले गये और वहाँ पी० अेच० डी० हुअे । वहाँसे
 फिर अंग्लैंड जाकर बरिस्टर हो गये और स० १९०८ श्री. में हिन्दुस्तान
 वापस आकर लाहौरमें प्रैक्टिस शुरू की । यहीं स० १९२२ श्री. में अन्होंने
 'सर' का खिताब पाया और स० १९३६ श्री. में अन्तकाल फ़रमाया ।

अक़बाल अंग्रेजी, अरबी और फ़ारसीमें खासी दस्तरस (पहुँच) रखते
 थे । मगर संस्कृत या हिन्दीका अन्हें बिल्कुल ज्ञान न था । अन्होंने मश-
 रिकी व मगरिबी दोनों फ़िलसफ़ाओंका गहरा मताला किया था; असलिये
 अिनके आला दर्जेके कलाममें फ़िलसफ़ियतका रंग जमा हुआ है । अब अिनमें
 सिर्फ़ यही था कि मुश्किल-पसन्द बहुत थे, बल्कि आखिरी अुम्रमें तो आसान
 ज़बान लिखना बेअिज़्जती समझने लगे थे । अिनकी तसनीफ़ें यह हैं:—

(१) 'अल्म अुल अिक्कतसाद' : यह अुर्दू ज़बानकी सबसे पहली किताब
 है जो अिक्कतसाद (अेकानामी) पर लिखी
 गयी है । शायी स०- १८९६ श्री.

(२) 'फ़िलसफ़ा अे आरान':— पी० अेच० डी० का थेसिस है ।

(३) 'अिसरारे खुदी':—फ़ारसी मसनवी है । अिसका अंग्रेजीमें तर्जुमा हुआ है ।

यह यूरोप और अमरीकामें बहुत ही मकबूल हो
गयी थी ।

(४) रमूज़ बेखुदी— अेक फ़ारसी मसनवी है ।

(५) 'पयामे मशरिक':—फ़ारसीकी ही अेक किताब है ।

(६) 'बाँगेदरा'

(७) 'कुल्लियाते अिक़बाल'

(८) 'बाल जबरील'

}

अुर्दू कविताओंके संग्रह ।

(९) 'मुसाफ़िर'

फ़ारसी नज़मोंका मजमूआ ।

अिक़बाल सबसे पहले तब मशहूर हुअे जब लाहौरकी अंजुमने अिस्लाम के सालाना जलसेपर (स० १८६६ आ. में) अुन्होंने अपनी 'नालाअे यतीम' नामकी निहायत दर्दसे भरी हुअी और पुरअसर नज़म पढ़ी । अिसके बाद हरसाल अिस जलसेमें वह अपने जौहर दिखलाया करते थे । अिक़बालने अैसा ज़बर्दस्त हाफ़िज़ा पाया था कि अक्सर पूरी की पूरी नज़में बग़ैर कागज़ देखे पढ़ सकते थे ।

अिनकी शायरीके तीन दौर साफ़ तौरपर नज़र आते हैं:

पहला दौर

स० १८९९ से

यानी अिनके विलायत जाने तकका

१९०५ आ. तक

जमाना जिसे हम तैयारीका ज़माना

कह सकते हैं । अिस ज़मानेका कलाम ज़्यादातर राज़लोंकी सूरतमें है । लफ़्ज़ोंमें और बंदिशमें कुछ ढीलापन मालूम होता है । अिस वक़्तकी ज़बान ज़्यादातर आसान और सुलझी हुअी है । अिक़बालको कौमी शायर का जो ओहदा सारे हिन्दोस्तानकी तरफ़से बहाल किया गया वह अिसी ज़मानेकी शायरीका नतीज़ा है । अिस अहदमें यह सच्चे अर्थमें कौमी शायर थे । अुनकी 'हिमालय' 'तरानाअे हिन्दी' 'नया शिवाला' वग़ैरह नज़में अिसी ज़मानेकी यादगारें हैं जो हरेक हिन्दुस्तानीके लिये फ़ख़्र करनेकी चीज़ें हैं ।

दूसरा दौर

स. १९०५—

अस दौरमें शायरने यूरोपमें क्रयाम किया जहाँ मि.

१९०८ आ. तक आर्नाल्ड साहबकी सोहबतका अनुपर काफी गहरा असर पड़ा। उनके दिलसे कौमियतका रंग फीका पड़ने लगा और फिरका-वाराना खयालोंने जोर पकड़ा। अस अरसेमें अन्हें फ़ारसीका भी अच्छा खासा शौक हो गया जिसका असर ज़बानपर बहुत बुरा हुआ। यानी साफ़ सादा और आसान ज़बान मुश्किल और बनावटी होती गयी। सारांश तीसरे दौरकी अन्तदायी भलक इस दौरमें दिखायी देती है।

तीसरा दौर

१९०८ से

अनके विलायतसे हिन्दोस्तान वापस आ जानेपर यह

१९३६ आ. तक

दौर शुरू हुआ। असमें अनकी शायरीकी मशक अपने

कमाल दर्जेको पहुँच गयी। अस दौरको कौमी लिहाज़से बदकिस्मतीका दौर समझना बजा होगा। क्यों कि अस ज़मानेमें दूसरे मुस्लिम लीडरोंकी तरह यह भी पूरे मिल्ही (फिरकापरस्त) और पॅनअस्लामिज़्मके पके हामी बन गये। फिर भी अनकी अन्तदायी शायरीको देखते हुअे हम यह नहीं कह सकते कि अक्कबालने कुछ भी नहीं किया। कितना अच्छा होता अगर अक्कबालके दिल और कलाममें कौमकी वह मुहब्बत और अज़्जत कायम रहती जो शुरू ज़मानेमें थी।

अुर्दूके आम शायरोंकी तरह यह मायूस शायर नहीं थे। अनका कलाम फ़िलसफ़ाना हकीकतोंसे मामूर (भरा हुआ) है। अनकी अेक खासियत यह भी थी कि वह पश्चिमी तहज़ीबके दुश्मन थे। उनके कलाममें अुम्मीद और अुत्साहके फूल जाबजा खिले हुअे होते हैं। छोटे-छोटे लफ़्ज़ोंमें मानीके दरिया भर देनेकी अनकी खूबी तारीफ़ करनेके काबिल है। अुर्दू शायरीमें शायद यही पहले शायर हैं जिनकी शुहरत हिन्दोस्तानके बाहर दूर दूरके मुल्कोंमें भी फैली हुई है। कलामका नमूना देखिये :—

— — * : * — —

वो चीज नाम है जिसका जहाँमें आजादी ।
 सुनी जरूर है देखी कहीं नहीं मैंने ॥
 खुदा तो मिलता है अिन्सान नहीं मिलता ।
 यह चीज वह है कि देखी कहीं कहीं मैंने ॥

—X—

रुलाता है तेरा नज़्जारा अै हिन्दोस्तौं मुझको ।
 कि अिबरतखेज है तेरा फिसाना सब फिसानों में ॥
 दिया रोना मुझे अैसा कि सब कुछ दे दिया गोया ।
 लिखा किलके अजलनें मुझको तेरे नौहाख्खानोंमें ॥
 वतनकी फिक्र कर नादाँ ! मुसीबत आने वाली है ।
 तेरी बर्बादियोंके मशिवरे हैं आसमानोंमें ।
 न समझोगे तो मिट जाओगे अै हिन्दोस्तौंवालो ।
 तुम्हारी दास्तौं तक भी न होगी दास्तानोंमें ॥

—♦—

सूनी पड़ी हुअी है मुद्दतसे दिलकी बस्ती ।
 आ अिक नया शिवाला अिस देशमें बना दें ॥
 हर सुबह अुठके गायें मन्तर वो मीठे मीठे ।
 सारे पुजारियोंको मै पीतकी पिलादें ॥

=====

कैदमें आया तो हासिल मुझको आजादी हुअी ।
 दिलके लुट जानेसे मेरे घरकी आबादी हुअी ॥

—X---

ढूँढ़ता फिरता हूँ मै अै अिकबाल ! अपने आपको ।
 आप ही गोया मुसफिर आप ही मंज़िल हूँ ॥

--X--

नसर [गद्य]

अर्दूकी नसर (गद्य)

नसरकी अिन्तदा

किसी भी ज़बानका अितिहास लिखते वक्क यह तय करना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि अुसके गद्यका प्रारंभ कब, कैसे और किससे हुआ; क्योंकि नज़्म जिस तरह लोगोंके दिलों और ज़बानोंपर बैठ जाती हैं अुस तरह नसर नहीं बैठती; और चूँकि नखकी तारीखका ठीक ठीक पता नहीं लगता है अिसलिये आलिमोंने अिस रायपर मंजूरीकी मुहर लगा दी है कि अदबका प्रारम्भ कवितासे हुआ करता है। लेकिन यह बिलकुल साफ़ है कि नज़्म बनानेकी जरूरत महसूस होनेसे पहले या अुसमें चलने फिरनेकी शक्ति आ जानेसे पहले कोअी अिन्सान बिना बात किये चुपचाप ज़िन्दगी नहीं बसर कर सकता। किस्से कहानियाँ कहने और खतपत्र लिखनेकी जरूरत आदमीके साथ ही जन्म लेती है। क्या हम यह कह सकते हैं कि कुली कुतुबशाह या अमीर खुसरोसे पहले लोग किस्से कहानियाँ नहीं सुनते-सुनाते थे या खतपत्र नहीं लिखते थे ?

दूसरी अेक महत्त्वकी बात अिस बारेमें याद रखनेकी यह है कि आदर्मा सच्ची कविता तभी करता है जब अुसके भाव वेकावू होकर अुमड़ अुठते हैं और अुन्हें जाहिर करनेके वास्ते अुसके पास जरूरी लफ़्ज़ हो जाते हैं। लेकिन नख तो हवा और पानीके जितनी ही जरूरी बात हैं।

जो हो। अर्दूके गद्यके जो पुरानेसे पुराने नमूने अिस वक्कत तक मिल सके हैं अुनसे पता चलता है कि अर्दू नखकी तारीख अीसाकी चौदहवीं सदीसे शुरू होती है। हो सकता है कि अिससे पहले भी अिस दिशामें कोअी कोशिश की गयी हो, लेकिन आज अुस जमानेके साहित्यका कोअी निशान नहीं मिलता। जो नमूने आज तक मिले हैं वह भी अदबी हैसियतसे किसी ख़ास

महत्वके नहीं हैं। यह एक ताज्जुबकी बात है कि पद्यकी तरह गद्यकी शुरुआत भी दक्षिणमें ही हुआ। गुजरात और दक्षिणकेज फ़कीरों और धर्मप्रचारकों ने अपने दीन (पंथ) को फैलानेकी गरजसे बहुतसी अरबी और फ़ारसी किताबोंके अर्द्धमें तर्जुमे किये। सबसे पुरानी किताबें शेख़ अँनुद्दीन गंजुलअल्म (मृत्यु-वर्ष १३३२ श्रीसवीके करीब) की हैं। अिसके बाद बीजापूरके शाह मीर नजी शम्सुल अुद्शाक जो एक पहुँचे हुअे फ़कीर थे—की छोटी छोटी किताबें पायी जाती हैं।

शुमाली हिन्द-दिल्लीकी सबसे पुरानी नसरका नमूना 'फ़जली' की 'दह मर्जालिस' है जो कि फ़ारसीकी एक किताबका तर्जुमा है। यह स० १७३२ अी. में शायी हुआ। अिसमें बहुतसी कमियाँ हैं। जुमले पेचीदा, आडंबरपूर्ण और अनुप्रासयुक्त हैं। मानी भी साफ़ साफ़ नहीं मालूम होते। अिसी ज़मानेमें कविवर सौदाने अपने कुल्लियातके शुरूमें जो दीवाचा लिखा है वह भी जिक्र करने लायक है। आजकलके व्याकरणकी पाबन्दी अिसमें नहीं पायी जाती। नज़्मकी तरह काफ़ियेदार लफ़्ज़ जुमलोंके आखिरमें रख दिये हैं। उपमा और अुत्प्रेक्षाओंसे मज़मून ममलू (भरा हुआ) है। मतलब कि, नज़्म और नसरमें बहुत ही कम फ़र्क़ पाया जाता है।

अिसके बाद अुर्दू दीवाचों और तजुमोंका रिवाज सा चल पड़ा। स० १७९८ अी. में 'चहार दरवेश' का तर्जुमा मीर मुहम्मद अता हुसेन खाँ 'तहसीन' ने 'नौ तर्ज़े मुरस्सअ' के नामसे किया। अिसकी अिबारत निहायत रंगी और अरबी व फ़ारसी शब्दोंसे ठसाठस भरी हुआ है। मगर यह अितनी पेचीदा हो गयी है कि आसानीसे समझमें नहीं आती। मीर अम्मन देहलवी, ने अिसी 'चहार दरवेश' का तर्जुमा 'बाग़ व बहार' के नामसे किया जिसकी भाषा साफ़, सादा और बामुहाबरा है, अिसलिये यह तर्जुमा बहुत मक्कबूल हुआ।

जब अंग्रेजी सल्तनत यहाँ पूरी तरह जम गयी तो दूसरी ज़बानोंकी तरह अुर्दूकी तरफ़ भी काफ़ी तवज्जुह की गयी। अंग्रेज शासक यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक हाकिम लोग अपने महकूमों (शासितों) की ज़बान न सीख लें, तब तक अुनके दिलोंपर वह काबू नहीं पा सकते। हिन्दुस्तानकी पूरी तरह गुलाम बनानेके लिये यह ज़रूरी था कि अुसपर अंग्रेजी तहज़ीबका

रोब अच्छी तरह जमा लिया जाय। इसके वास्ते अंग्रेजी जवानके शिकजेमें हिन्दुस्तानी दिलों और दिमागोंको फँसा देना लाजिमी था। मगर इस काम के लिये यह बेहद जरूरी था कि सबसे पहले खुद अंग्रेज लोग देसी भाषाओंसे परिचित हो जायँ। खास अिसी खयालसे स० १८०० अी. में कलकत्तेमें फोर्ट विल्यम कॉलेज कायम किया गया। शायद अंग्रेजोंने ऐसा भी सोचा होगा कि, जब कि हम यहाँके शासक बन गये हैं तो यहाँकी रिआयाकी भलाअी, तालीम, और तरक्कीकी जिम्मेदारी भी हमीं पर है। असलिये देसी जवानोंके साथ साथ मुल्कमें अंग्रेजी तालीम भी शुरू की गयी। अस बातका जिक्र हम आगे चलकर करेंगे कि अंग्रेजी शिक्षाका अुर्दू जवानके रंग-रूपपर क्या असर हुआ।

असलमें देखा जाय तो फोर्ट विल्यम कालेजने ही अुर्दू नसर और नये जमानेके अुर्दू अदबकी नींव डाली। अुर्दू भाषाकी बाकायदा पढ़ाअी यहीं शुरू हो गयी और धीरे धीरे वह आलीशान अिमारत तैयार हो गयी जिसे देखकर देखनेवाला हैरतमें आ जाता है कि अितने कम वक्कमें अितनी बड़ी और अितनी खूबसूरत अिमारत कैसे खड़ी हो गयी ! ताजुब की बात है कि इसके बनानेमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंने अेक दिलसे और अेक विचारसे काम किया। जो हिन्दू-मुस्लिम फ़िसादसारे देश और कौमको खाकमें मिलानेकी कोशिश कर रहा है वह अस कालकी अुर्दूमें नहीं देखा जाता। अस मंदिरके कारीगरों और पुजारियोंमें सिर्फ हिन्दू और मुस्लिम ही नहीं बल्कि यूरोपके भीसाअी भी शामिल हैं। मसलन डॉ० जॉन गिलक्राइस्ट, कैप्टन रोबक; डॉ० हंटर, कैप्टन टेलर वगैरह।

फोर्ट विल्यम कॉलेजके लेखकों और अनुवादकोंमेंसे नीचे लिखे नाम खास तौरपर मशहूर हैं:--डॉ० जॉन गिलक्राइस्ट; लल्लूलालजी, अम्मन, सदल मिश्र, अफ़सोस, हुसेनी; लुत्फ़, मदारीलाल, वेणीनारायण 'जहाँ', हैदरी, जवान, मौ० अिमामबख्श सहबाअी, मुन्शी करीमुद्दीन, मुन्शी निहालचन्द, शाह अब्दुल कादिर; सितारे हिंद, अिकरामअली खाँ, वगैरह।

अिनमेंसे बहुतसे लोग अैसे हैं जिन्होंने हिन्दी और अुर्दू दोनों जबानों-की खिदमत की । कुछ तो अैसे हैं जिन्होंने सिर्फ दरसी किताबों तक ही जाना पसंद किया । बाकी अैसे हैं जिनका काम अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी वगैरह दूसरी देसी और विदेशी जबानोंसे तर्जुमे करना था । अिस जमानेमें मौलिक किताबें बहुत कम निकलीं । लेकिन यहाँसे जो सोता अेक-बार निकला वह थोड़े ही असेमें सारे अुत्तरी भारतमें फैल गया और अुसमें से नये नये ढंगकी किताबें आये दिन निकलने लगीं ।

X

X

X

फोट विल्यम कालेज

डॉ० जॉन गिलक्राउस्ट

डॉक्टर साहब स्कॉटलन्डके बाशिनदे

स० १७५६ से १८४७ आ. तक (निवासी) थे। अनका जन्म
 ओडिबरोमें स. १७५९ आ. में हुआ था। स. १७८३ आ. में आस्ट
 ऑडिया कम्पनीके डॉक्टरकी हैसियतसे यह हिन्दुस्तानमें आये। यहाँ आकर
 उन्होंने देखा कि यहाँके युरोपियन अफसर देसी जवानोंकी बनिस्बत फ़ारसी
 और संस्कृतकी ओर ज़्यादा आकर्षित हैं। अन्हें यह बात कुछ खटकी।
 कुछ दिनों बाद उनका यह खयाल पक्का हो गया कि अगर अंग्रेजोंको यहाँ
 अपनी जड़ अच्छी तरह जमानी है तो अन्हें देसी भाषाओंकी तरफ़ ज़्यादा
 ध्यान देना चाहिये। उनके आस खयालने ही 'फोर्ट विल्यम कालेज' को
 जन्म दिया।

स. १८०४ आ. में पेन्शन लेकर यह विलायत चले गये और वहाँ
 ओरिअेंटल अन्स्टिट्यूटमें अर्दू जवानके प्रोफ़ेसरकी हैसियतसे काम करते
 रहे।

डॉक्टर साहबने अर्दू और हिंदी दोनों ज़बानोंपर अतने अहसान
 किये हैं कि जबतक यह ज़बानें दुनियामें रहेंगी, अन्हें याद करती रहेंगी।
 खासकर अर्दूकी तालीम और तरक्कीके लिए जॉनसाहबने जो कोशिशें कीं
 अन्हें देखकर कहना पड़ता है कि 'पिदरे नखे अर्दू' (अर्दू गद्यके पिता)
 कहलानेके वे ही सचमुच अधिकारी हैं। अन्हींकी अनथक कोशिशोंसे अर्दू
 मुकम्मिल हो कर 'सरकारी ज़बान' का दर्जा हासिल कर सकी।

अनके बारेमें यहाँतक मशहूर है कि यह हिंदुस्तानी कपड़े पहन कर
 उन मुकामोंमें जहाँ बहुत सही और बामुहावरा अर्दू बोली जाती थी, बरा-
 बर घूमा करते थे मगर किसीको शुबहा तक न होता कि जनाबकी

जबान झुर्दू नहीं है । संस्कृत, फ़ारसी और दूसरी कभी देसी भाषाओंसे भी यह अच्छी तरह वाक्किफ़ थे ।

अन्होंने सैकड़ों किताबें यहाँके आलिमोंसे तैयार करवायीं जिनसे अर्द अदबका खज़ाना मालामाल होने लगा । खुद अन्होंने भी बहुतसी किताबें जबानके मुताल्लिक़ लिखी हैं जिनसे नौसिखुअ तालिब अल्म (विद्यार्थी) बहुत कुछ फ़ायदा, अब भी उठा सकते हैं । अनिकी मशहूर रचनाओं यह हैं:—अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी डिक्शनरी, ओरिअंटल लिंग्वैस्टिक; हिन्दुस्तानी ग्रामर, हिन्दुस्तानी फ़ायलालांजी वगैरह ।

मीर अम्मन

देहलवी मीर अम्मन दिल्लीके रहने वाले थे लेकिन मृत्यु स. १=१० अ. के करीब जाटोंके हमलेके वक़््त अन्हें दिल्ली छोड़कर पटना और वहाँसे कलकत्ते भाग जाना पड़ा । वहाँ डॉक्टर जान गिलकाअिस्टसे जान पहचान हो गयी और यह मुंशीके ओहदे पर मुकर्रर किये गये । यहाँ रहकर अन्होंने दो किताबें लिखीं । अ़ेक 'बागोबहार' जो अमीर खुसरोकी मशहूर 'चहार दरवेश' कहानीका तर्जुमा है और दूसरी 'गंजीन अ़े ख़वी' । 'बागोबहार' यहाँ तक मक़बूल हुअी कि अंग्रेजी अफ़सरोंके झुर्दूके अ़िम्तहानोंमें दरसी किताबके तौरपर वह दाख़िल हो गयी और कभी बरस तक चलती रही ।

मीर साहबकी जबान बहुत साफ़, सुलझी हुअी और आला दर्जेकी है । अनिके बारेमें सर सैयद कहते थे कि 'कवितामें जो स्थान मीर 'तकी' को हासिल है वही स्थान गद्यमें मीर अम्मनको है ।'

अफ़सोस

स. १७३५— मीर शेरअली 'अफ़सोस' दिल्लीके रहने वाले थे; १८०६ अ. मगर बचपनमें ही अनिको अपने बापके साथ पटना जाना पड़ा । वहाँसे घूमते घामते यह लखनऊ पहुँचे । वहाँ वे अपना कलाम मीर हैदरअली 'हैरान' को दिखाते थे । कर्नल स्कॉट साहबके जरिये फ़ोर्ट विल्यम कालेजमें अ़ेक अँचे ओहदेपर मुकर्रर हुअे । यहाँ रहकर अन्होंने 'गुलिस्ताँ सादी' का 'बागे अर्दू' के नामसे अर्दूमें तर्जुमा किया । 'आराअिशे

महफिल' नामकी अेक दूसरी किताब भी अन्होंने लिखी है जिसमें हिन्दुस्तान का भूगोल और अतिहास थोड़ेमें बयान किया है । अनका अेक दीवान भी है जो आदर और अिज्जतकी निगाहोंसे देखा जाता है ।

लल्लूला।लजी

(ज. स. १८२५ आी.) यह गुजराती ब्राह्मण थे मगर बहुत दिनोंसे अुत्तर भारतमें जा बसे थे । 'लतायक' हिन्दी' नामकी अेक किताब अन्होंने हिन्दी भाषामें लिखी है । हिन्दी-अुर्दूकी पाठ्यपुस्तकें बनानेमें अन्होंने बड़ा हिस्सा लिया था । शाकुन्तल, सिंहासन बत्तीसी, बेताल-पच्चीसी वगैरह किताबोंके तर्जुमोंमें अनकी बहुत मदद हुआ थी

×

×

÷

अिस जमानेमें पादरियोंका बड़ा दौर-दौरा था । वह हिन्दू-मुसलमानोंकी मजहब कीताबों पर अैतराज करते थे, और हिन्दू-मुसलमान अुन्हें जवाब देते थे । अिस तरह भी बहुत-सी किताबें लिखी गयीं । कुरान शरीफके तर्जुमे भी आसान अुर्दूमें करनेकी कोशिशें हुअीं । पादरियोंको अपनी बातें आम लोगोंमें फैलानी थीं अिसलिये अुन्होंने आमफहम और आसान अुर्दूमें रिसाले (पम्पलेट) छपवाकर बाँटे । अिन रिसालोंसे हालाँकि अदबी जबानमें कोअी खास तरक्की नहीं हुआ, मगर फिर भी अितना तो कहा जा सकता है कि जो मंदिर आगे चलकर खड़ा हुआ अुसकी बुनियादको मजबूत बनानेमें पादरियोंका भी कुछ न कुछ हाथ जरूर था । अनकी देखा-देखी और भी बहुतसे पंथोंके प्रचारकोंने आसान जबानमें पचें निकालने शुरू किये जिससे साहित्यिक लोगोंके दिमागमें यह बात जम गयी कि अगर हमें अपनी बातें जनताको समझानी हैं तो अैसी भाषाका अिस्तेमाल करना चाहिये जो ज़्यादा से ज़्यादा लोगोंकी समझमें आ जाय ।

दिल्ली और लखनऊ के नस्सार

पिछले बाब (अध्याय) में हमने जिन साहित्यिकोंका जिक्र किया है वह सब फोर्ट विल्यम कॉलेजसे ताल्लुक रखते थे । जिसके मानी यह हरगिज नहीं कि उन दिनों सिर्फ वे ही लोग जो ज़्यादातर मुतरज्जम (अनुवादक) ही थे अदबी दुनियाके बलन्द सितारे थे । नहीं ! च्यूँकि दिल्लीकी तबाहीके बाद शायरीका मरकज लखनऊ बन चुका था, जिसलिये जब नस्सका ज़माना शुरू हो गया तो लखनऊ भी कॉलेजसे पीछे न रहा ।

वहबी मज़हबको हिन्दुस्तानमें फैलानेकी कोशिश करनेवाले मौ. अस्मा-अल (स. १७९६-१८३१ अ.) ने 'तक्विय अल अमीन' नामकी किताब और बहुतसे मज़हबी पर्चे अर्द्धमें लिखकर छपवाये थे । शाह वलीअल्ला साहबके बेटे शाह रफीअर्द्दीन (स. १७४९-१८१८ अ.) और शाह अबदुल कादिर (स. १७५३-१८१५ अ.) ने कुरान शरीफके दो उम्दा तर्जुमे अर्द्धमें तैयार किये जो आज भी अज़्जतकी निगाहोंसे देखे जाते हैं । खलिलअल्ला खाँ 'आशिक' फ़ैज़ाबादके रहनेवाले थे । उन्होंने बहुत सी किताबें लिखीं जिनमें 'किस्साअे अमीर हमज़ा' 'वाक़याते अकबरी' 'अन्तखावे मुल्तानिया' वग़ैरह जिक्र करनेके काबिल हैं ।

मिर्जा जान तैश, सआदत यार खाँ 'रंगीन', फ़कीर मुहम्मद खाँ 'गोया,' गुलाम अिमाम शहीद, प्रोफ़ेसर रामचन्द्र, अब्दुल करीम वग़ैरह लोग भी अपनी अपनी किताबोंके लिये मशहूर हैं । इसी वक्ककी सैयद अन्शा अल्ला खाँकी तस्नीफ़ 'दरियाअे लताफ़त' में अर्द्ध खतों और बोलचालकी ज़बानोंके जो नमूने दिये गये हैं वह गौर करने लायक हैं । लेकिन जिस ज़मानेमें 'सुरू' और 'ग़ालिब' दो अैसे ज़बर्दस्त मुसन्निफ़ (लेखक) गुज़रे हैं कि उनके तवील (विस्तृत) हालात यहाँ देना मुनासिब होगा ।

सुरूर

स. १७८९-१८६७ आ. तक मिर्जा रजबअली बेग 'सुरूर' लखनऊके सबसे पुराने और मशहूर मुसलमान और शायर हैं।

स. १८२५ आ. में यह कानपुर चले गये और वहीं अन्होंने अपनी मशहूर किताब 'फिसाना अे अजायब' लिखी। यह बहुत ही मकबूल हो गयी। अिसका किस्सा मामूली हुस्न और अिश्कका फिसाना है जिसके मजमून और वाक्यातमें कोअी मौलिकता नहीं दिखायी देती। अुसकी ज़बान भी अुसी ज़मानेकी अनुप्रासपूर्ण फारसीसे लबालब भरी हुअी और बिलकुल बनावटी-सी है। अिसमें सिर्फ़ तिलिस्म, जादू, देवों (राक्षसों) से लड़ाअियाँ, जादूगरोंके मुकाबले, वगैरह पुराने ढंगकी चीजें पायी जाती हैं और यही वजह है कि नौजवान तबीयतोंको अिसमें बहुत दिलचस्पी आती थी।

जिस तरह अुर्दू नज़्मकी अिब्तदा मसियों, गज़लों और मसनवियोंसे हुअी अुसी तरह अुर्दू नख्की बुनियाद फ़र्ज़ी (काल्पनिक) किस्सों, अफ़सानों और तर्जुमोंपर रखी गयी। अिसी लिहाज़से सुरूरकी अिस किताबका महत्त्व है। कॅरेक्टर-निगारी अिसमें बहुत ही कम है मगर लखनऊकी जीती-जागती तस्वीर खींचकर लेखकने अमिट नाम हासिल किया। फ़ारसी लफ्ज़ों और तुकबन्दीने अिन्हें अिस तरह खींच लिया है कि अक्सर जगह पढ़नेवाला लफ्ज़ोंके जालमें फँस जाता है और मानी भूल जाता है।

'फिसाना अे अजायब' के अलावा और भी बहुत सी किताबें अिन्होंने लिखी हैं जिनमें 'शररे अिश्क' 'शगूफ़ा अे मुहब्बत' 'शबिस्ताने सुरूर' ज़्यादा मशहूर हैं। 'अिशा अे सुरूर' नाम का सुरूरके खतोंका संग्रह भी काफी मशहूर व मकबूल है।

गालिब

गालिबका पूरा जिक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है। गालिब जिस तरह बेनज़ीर शायर हैं अुसी तरह वह फ़ारसी और अुर्दू दोनों जबानोंके बेमिसाल नस्सार भी हैं। अुनकी अुर्दू नख्की तसनीफ़ें ज़्यादातर खतों और रुक्नोंके संग्रहोंके रूपमें हैं जिनके नाम 'अुर्दू अे मुअल्ला'

और 'अूदे हिन्दी' हैं। उनके खतोंकी जवानकी यह खासियत है कि वह बिलकुल बेतकल्लुफ है। अिननी साफ और रोजमर्रा जवान किसी और जगह शायद ही देखनेको मिलेगी। अिनके लिखनेमें बिलकुल बातें करनेका मजा आता है। लेकिन हाँ ! गालिबने जो दीबाचे और आलोचनाएँ लिखी हैं उनकी जवान बिलकुल पुरतकल्लुफ और पेचीदा है जो अुस वक्त पूरी तरह राज थी। मीर लालकी 'सिराजुल मुअररिफत' को अुन्होंने जो दीबाचा लिखा है अुससे हमारे कथनकी पुष्टि होगी।

मिर्जा गालिबके अेक खतका हिस्सा जो अुन्होंने मिर्जा यूसुफको लिखा था :-

“यूसुफ मिर्जा ! क्यौंकर तुझको लिखूँ कि तेरा बाप मर गया ? और अगर लिखूँ तो फिर आगे क्या लिखूँ ? कि अब क्या करो ? मगर सब ! यह अेक शैबाअे फरसूदा अबनाअे रोजगारका है। ताजियत यूँ ही किया करते हैं और यही कहा करते हैं कि सब करो। हाय ! अेकका कलेजा कट गया है और लोग अुसे कहते हैं कि तू न तडप। भला क्यौंकर न तडपेगा ? सलाह अिसमें नहीं बतायी जाती, दुआको दखल नहीं। दवाका लगाव नहीं। पहले बेठा मरा, फिर बाप मरा। मुझसे अगर कोअी पूछे कि बेसरोपा किसको कहते हैं तो मैं कह दूँगा, यूसुफ मिर्जा को।

मुजफ्फर मिर्जाको दुआ पहुँचे। तुम्हारा खत जवाब-तलब न था। तुम्हारे चचाका आगाज अच्छा है। खुदा करे अंजाम अिसी आगाजके मुताबिक हो। अुनका मुकद्दमा देखकर तुम्हारी फूफीका और तुम्हारा सर-अंजाम देखा जायगा कि क्या होता है। होगा क्या ? अगर जायदाद मिली भी तो कर्जदार दाम दाम ले लेंगे। राजिक हकीकती पेन्शन दिलवा दे कि रोटीका काम चले। जनाब मीर कुरबानअली साहबको मेरा सलामे नियाज और मीर काजिम अलीको दुआ।

गालिब

मरकूमा शम्बा २७, शवाल, व ८ मअी सालहाल

*

*

*

यह जमाना अर्दूकी नसकी तरक्कीका पहला दौर है । अस दौरमें छापेखाने वजूदमें आये जिससे अखबार, रिसाले और किताबें बड़ी तादादमें छपकर निकलने लगीं । स. १८३२ आी. में फ़ारसीके बजाय अर्दू सरकारी ज़बान करार पायी जिससे अर्दूकी तालीम और तरक्कीमें बहुत बड़ा फायदा पहुँचा । जब तालीम शुरू हुआ तो दरसी किताबोंकी जरूरत ज्यादा महसूस होने लगी । नतीजा यह हुआ कि कअरी जगहोंसे बच्चोंकी किताबें तैयार हो कर निकलने लगीं जिनकी ज़बान आसान और साफ होती थी । मगरिबी तमद्दुन (सभ्यता) और अंग्रेजी तालीमके असरने ज़बानको आसान बनाकर और भी चमका दिया । अब लफ्ज़ोंके बजाय मजमूनपर ज़्यादा जोर दिया जाने लगा ।

अब दो दौर बाक़ी हैं जिन्हें हम 'अलीगढ़ कॉलेजका दौर' और 'दिल्ली कॉलेजका दौर' कह सकते हैं । असके अलावा और भी बहुतसे शायर और नासिर (गद्यलेखक) हैं जो अिन दोनों मरक़िज़ोंसे दूर रहे हैं । बहुतसे अदीब ऐसे हैं जो हैं तो दिल्ली कॉलेजसे ताल्लुक रखनेवाले, मगर जिनपर सर सैयद अहमदख़ाँकी जबर्दस्त छाप दिखाअी देती है ।

अब ज़बानकी बहुत-सी नयी नयी तर्ज़ें हो गयीं । मसलन् बाज़ अरबी फ़ारसी पढ़े-लिखे मुसन्निफ़ोंकी ज़बानमें अुन अुन ज़बानोंके ज़्यादा लफ्ज़ आने लगे । अुनकी ज़बान बहुत ही मुश्किल और पेचीदा बन गयी । सर सैयद जैसे सुधार चाहनेवालोंकी ज़बान बहुत कुछ आसान और निहायत सीधी-सादी होती थी; मगर वह बादमें आनेवाले लोगोंको रूखी-फ़ीकी-सी मालूम हुआ । दूसरा ब्रेक फ़िरका पैदा हो गया जिसने अपने लेखनमें हिन्दी और संस्कृतके जटिल शब्द ठूस ठूस कर भरना शुरू किये (आज भी पंजाब और देहलीके हिन्द् सभावादी या आर्यसमाजी लेखकोंकी अर्दू अिसी ढंगकी है ।) अेक तर्ज़ वह भी निकली जो टागोरकी गीतांजलिकी तर्ज़ कही जा सकती है । लेकिन अुसमें सिर्फ़ लफ्ज़ ही लफ्ज़ हुआ करते हैं; मानीका कहीं पता ही नहीं चलता । अब यह तर्ज़ कुछ धीमी-सी पड़ गयी है ।

—X—

सर सैयद और अलीगढ़ कॉलेज सर सैयद अहमदखाँ

स. १८१७-१८६८ आ. सर साहब दिल्लीके रहनेवाले थे। मगर सरकारी नौकरीके सिलसिलेमें अन्हें बहुत जगह घूमना पड़ा। आखिरी अुम्रमें यह अलीगढ़ जाकर रहे, जहाँ बादमें मुस्लिम युनिवर्सिटी कायम हुआ। अनकी सबसे पहली किताब 'आसारअरसनादीद' है जिसमें दिल्लीकी पुरानी अमारतोंके बारेमें निहायत आसान और दिलावेज ज़बानमें लिखा गया है। यह अतनी मशहूर हो गयी कि अंग्रेज़ी और फ्रेंच ज़बानोंमें भी इसके तर्जुमे हो गये। असके बाद अनका तबादला दिल्लीसे बिजनौर हो गया। यहाँ रहकर अन्होंने 'तारीख बिजनौर' 'अस-बावे बगावते हिन्द' वगैरह बहुत-सी किताबें लिखीं जो बहुत ही मशहूर हैं। सन् १८६२ आ. में अन्होंने गाज़ीपुरमें 'सायन्टिफिक सोसायटी' की बुनियाद डाली। अस सोसायटीने बहुत-सी अंग्रेज़ी किताबोंके तर्जुमे निकाले जिससे अस ज़मानेमें वह बहुत मकबूल हो गयी। सन् १८६४ आ. में वह अलीगढ़ आये और वह सोसायटी यहीं आ गयी। सन् १८६६ आ. में अन्होंने एक अंजुमन कायम की जिसका नाम 'ब्रिटिश अिडियन असोसिएशन' था। अिसी ज़मानेमें एक माहवार रिसाला 'अलीगढ़ अिन्स्टिट्यूट गज़ट' के नामसे निकला जिसमें सर साहबके मज़मून कसरतसे रहते थे। सन् १८६९ आ. में ख़ाँ साहब विलायत गये जहाँ उन्हें सी. एस. आ. का खिताब मिला। ऑक्सफ़ोर्ड और केंब्रीजकी युनिवर्सिटियोंको देखकर अनपर बहुत गहरा असर हुआ। सन् १८७० आ. में हिन्दुस्तान वापस आकर अन्होंने अपना मशहूर अखबार 'तहज़ीब अुल अिखलाक' (मुस्लिम सोशल रिफ़ार्मर) शुरू किया। अस अखबारके पहले सात सालोंमें सैयद

साहबने कुल अेक सौ बारह मजमून लिखे जिनकी ज़बान बहुत साफ़ और जोरदार है । अिनके अध्ययनसे हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके विचारोंमें अेक बहुत भारी क्रान्ति दिखायी देने लगी ।

‘तकसील अुल कुरान’ के नामसे अिन्होंसे कुराने शरीफ़का सात जिल्दोंमें बिल्कुल नये ढंगसे तर्जुमा किया । इसके बीच-बीचमें बाअिबलके हवाले भी दिये हैं । जो मुसलमान लोग अुनके रिफ़ार्मी खयालोंसे बिगड़ गये थे वह अिस तर्जुमेकी वजहसे अुनके सख्त दुश्मन बन गये । वह सोचते थे कि सैयद साहब मजहबके खिलाफ़ बगावत कर रहे हैं । मगर खुद सैयद साहबपर अिस मुख़ालिफ़तका कुछ भी असर न हुआ । अपने कामसे वह किसी तरह टससे मस न हुआ । सन् १८७५ अी. में अलीगढ़ कॉलेजकी स्थापना हुई और सन् १८७८ अी. में मुलाजिमतसे छुट्टी पाकर सर सैयद अपना मारा वक्त तालीमी और खयाली बातोंमें गुज़ारने लगे ।

सर सैयदकी शैली निहायत साफ़ और सादी थी । व्याकरणकी पाबन्दीकी वह तनिक भी परवाह नहीं करते थे । फिर भी अुर्दू नज़्मके वह अैसे काबिल अुस्ताद माने गये जिनके पेशतर अुनका कोअी हमपन्ना (जोड़का) न था ।

सर सैयदके दोस्तोंमें बहुत ही आला दर्जेके शायर और नरसर थे । मसलन् नवाब मुहसिन अुल मुल्क; नवाब वक्कर अुल मुल्क, मौ. चिराग-अली; ख्वाजा अलताफ़ हुसैन ‘हाली’, मौ. नज़ीर अहमद, मौ. शिबली नामानी वगैरह । मुसलमानोंमें नयी रोशनी फैलानेका जो काम सर साहबने अपने सर पर लिया था, अुसमें अुनके यह दोस्त और साथी अगर हाथ न बँटाते, तो वह शायद ही अुतनी जल्दी पूरा हो सकता, जितने थोड़े असेमें अुन्होंने अुसे कर दिखाया ।

बाज़ लोग पहले-पहले तो अिनके खिलाफ़ थे मगर जब अुन्होंने अिनकी लगनका परिचय पाया तो वह अिनके दिली दोस्त बन गये, मुसलमानोंके लिये वह सचमुच अेक अिन्कलाबका जमाना था । अुस वक्क़के चंद नरसरोंका जिक्र हम आगे करेंगे । अिन सबका अलीगढ़ कॉलेजसे कुछ न कुछ तालुक़ जरूर रहा है ।

अिनकी नखका नमूना देखिये:—

देख, नादान बेवस बच्चा गह्वारेमें सोता है । उसकी मुसीबतजुदा माँ अपने धंदेमें लगी हुआ है और उस गह्वारेकी डोरी भी हिलाती जाती है । हाथ काममें और दिल बच्चेमें है; औरज बानसे उसको यूँ लोरी देती है सो रह, मेरे बच्चे सो रह ! और अपने बापकी मूरत और मेरे दिलकी ठंडक सो रह ! और मेरे दिलकी कोपल सो रह ! बढ़ और फलफूल ! तुझपर कभी खिजां न आने पावे । तेरी टहनीमें कोअी खार कभी न फूटे । कोअी कठिन घड़ी तुझ पर न आवे । कोअी मुसीबत जो तेरे माँ बापने भुगती तू न देखे । सो रह मेरे बच्चे सो रह ! मेरी आँखोंके नूर और मेरे दिलके सुरूर मेरे बच्चे सो रह ! तेरा मुखड़ा चाँदसे भी ज़्यादा रोशन होगा; तेरी खिसलत तेरे बापसे भी अच्छी होगी । तेरी शुहरत तेरी लियाक़त, तेरी मुहब्बत जो तू हमसे करेगा, आखिरकार हमारे दिलको तसल्ली देगी । तेरी हँसी हमारे अंधेरे घरका अजाला होगी । तेरी प्यारी प्यारी बातें हमारे गमको दूर करेगी । तेरी आवाज़ हमारे लिये खुशआयन्द रागिनियाँ होंगी । सो रह मेरे बच्चे, सो रह । और हमारी अुम्मीदोंके पौदे सो रह ! बोलो जब उस दुनियाँमें हम तुमसे जुदा हो जावेंगे तो तुम क्या करोगे ? तुम हमारी बेजान लाशके पास खड़े होंगे । तुम पूछोगे और हम कुछ न बोलेंगे । तुम रोओगे और हम कुछ रहम न करेंगे । और मेरे प्यारेरोने वाले ! तुम हमारे ढेरपर आकर हमारी रूहको खुश करोगे ! आह हम न होंगे और तुम हमारी यादगारीमें आँसू बहाओगे । अपनी माँका मुहब्बत भरा चेहरा, अपने बापकी नूरानी सूरत याद करोगे । आह ! हमको यही रंज है कि उस वक़्त हमारी मोहबत याद कर कर तुम रंजीदा होंगे । सो रह; मेरे बच्चे सो रह । सो रह; मेरे बाले सो रह !

[अुम्मीद से]

हाली

ख्वाजा अलताफ हुसैन 'हाली' का ज़िक्र नज़मके हिस्सेमें आ चुका है । यहाँ सिर्फ़ अुनकी नखकी तसनीफ़ोंके बारेमें लिखना है ।

हाली साहब गालिबके शगिर्द और सर सैयदके साथी थे । चुनांचे दोनोंकी

जबानोंका असर झुनपर पूरी तरह पड़ा हुआ है। 'तिरयाक ओ मसमूम' और 'मजलिस अन्निसा' यह दो मजहबी किताबें अन्होंने स. १८६८ अ. और स. १८७४ अ. में लिखी। अस्के बाद अिनकी तीन सबसे मशहूर किताबें शायी हुआँ अेक है 'हयाते जावेद'। जिसमें सर सैयदकी ज़िन्दगी और कामोंके हाल तक़सीलवार बयान किये हैं। यह अिनकी सबसे बड़ी नस़की किताब है। दूसरी किताब 'यादगारे ग़ालिब' है जिसमें अन्होंने अपने अस्ताद ग़ालिबके बारेमें बहुत ही अदबके साथ लिखा है। तीसरी किताब फ़ारमके मशहूर शायर साबी की जीवनी है जिसका नाम है 'हयाते साबी'। तीनों किताबोंकी जबान बहुत ही साफ़ सुथरी और सुलफ़ी हुआी है। अपने दीवानके लिये अन्होंने जो मुक़दमा (आमुख) लिखा था, अ्सका नाम शेर व शायरी है जिसमें सिर्फ़ अुर्दू ही नहीं बल्कि अंग्रेज़ी और फ़्रेंच जबानोंकी शायरीपर भी अन्होंने अपने फ़ाज़िलाना (विद्वत्तापूर्ण) ख़याल बयान किये हैं। अिसकी जबान कुच्छ बनावटी-सी मालूम होती है।

हालीकी तर्ज़ हालॉकि कोअी ख़ास तर्ज़ नहीं है मगर वह अेक बहुत बड़े नस्सार हैं। अिनकी अिबारत निहायत साफ़, सादा और ज़ोरदार होती है।

हाली साहबकी जबानका नमूना मुलाहिज़ा फरमाअिये।

“अब फ़र्ज करो अिस मुल्कके बाशिन्दोंका मेल जोल किसी अैसे मुल्क-वालोंसे हुआ जिनके तमाम काम अिल्मी अुसूलपर मबनी हैं। अन्होंने ज़िरायत, तिजारत, सनअत व दस्तकारी और तमाम जंगी और मुल्की मुहमातमें अिल्म ही को अपना रहबर बनाया है। क्या मामार, क्या बद्अी, क्या लोहार, क्या दरज़ी, क्या क़फ़शदोज गर्जकि तमाम पेशावर महज अिल्मकी हिदायतसे अपने काम सर अंजाम करते हैं। अुनके मेलजोल, लेनदेनने अिस मुल्क के गरीब बाशिन्दोंको सख़्त नुक़सान पहुँचाया। अुनकी तिजारतने अिनके अख़राजाते ज़िन्दगी हदसे ज़्यादा बढ़ा दिये। अुनकी सनअतसे अिनकी सनअत माद हो गयी; अुनकी दस्तकारीने अिनकी दस्तकारीको अ़ैंड कर दिया; मगर अेक मुह्त तक अिनको अिस बातकी ख़बर न हुआी कि हमारे पेशावर क्यों बेकार हो गये? हमारी कमाअियोंमें बरकत क्यों नहीं रही? हमारे अख़राजात

रोजबरोज क्यों बढ़ते जाते हैं ? हमारी आमदनी हमारे अखराजातको क्यों मकत फ्री नहीं होती ?

(दुनियाकी कल थ्रिल्मसे चलती है या अमल से ?)

हाली साहबकी ज़बानका और अक नमूना देखिये:—

औ ज़बान ! जिन्होंने तेरा कहना माना और जो तेरा हुक्म बजा लाये अन्होंने सख्त अलजाम अुठाये और बहुत पछताये ! किसीने अन्हें फ़रेबी मक्कार कहा, किसीने गुस्ताख और मुंह फट अिनका नाम रखा । किसीने रियाकार ठहराया, किसीने सखुनसाज । किसीने बद-अहद बताया और किसीने गुम्माज-ग़ैबत और बहुतान मकर और अिफ़तरा-तान और तशनीअ गाली और दुश्नाम-फक्कड़ और ज़ला-जगत और फव्ती-गर्ज दुनिया भरके अ़ैब अुनमें निकले और वह सबके सब सज़ावार ठहरे ।

औ ज़बान ! याद रख; हम तेरा कहा न मानेंगे । और तेरे काबूमें हरगिज न आयेंगे । हम तेरी डोर ढीली न छोड़ेंगे और तुम्हे मुतलक अल अानान न बनायेंगे । हम जानपर खेलेंगे पर तुम्हसे भूठ न बुलवायेंगे, हम सरेके बदले नाक न कटवायेंगे ।

(ज़बान-गोया)

मौ. नज़ीर अहमद.

स. १८३१-१९१२ श्री.

शम्सुल अुल्मा ख़ाँ बहादुर मौलाना नज़ीर अहमद ज़िला बिजनौरमें पैदा हुअे थे ।

हाली, अज़ाद, मौ० ज़काअुल्ला वग़ैरह मशहूर शायर व नस्सार दिल्ली कॉलेजमें अिनके साथी थे । यह बहुत रोज़ तक गवर्मेंटकी मुलाज़िमतमें रहे और बादमें कुछ सालके लिये हैदराबाद (दक्षिण) जा कर काफ़ी नाम और पैसा कमा लाये । अिन्होंने अपनी अखिरी अुम्र अलीगढ़ कालेजकी ख़िदमतमें गुज़ार दी । बीसवीं सदीके शुरूमें जो तीन ज़ाबर्दस्त नॉवेलनिगार हो गये अुनमें मौलाना साहबका दर्जा निहायत अ़ूँचा है । 'बनातुआश' और 'मिरातुल अरूज़' अिन दो अुपन्यासोंका तो अेक ज़मानेमें घर घर में प्रचार हुआ था । 'मुहसनात' और 'अय्यामा' में अिन्होंने शादी और निकाहके

बारेमें अपने नये ढंगके विचार लिखे हैं। इनकी रचनाओं विपुल हैं जिनमें ज्यादातर किस्से कहानियाँ ही हैं। 'अंडियन पिनल कोड' 'टैक्स श्रैक्ट' 'अंडियन श्रेविडन्स श्रैक्ट' वगैरह किताबोंके तर्जुमे भी अन्होंने किये हैं जो बहुत मकबूल हुअे।

मौलाना साहब निहायत सादा मिज़ाज और हँसोड़ शाख्स थे। उनकी ज़बान बहुत साफ़, सादा, आसान और घरेलू है जिससे अउनकी किताबें औरतोंमें बहुत बड़ी तादादमें पढ़ी जाती थीं। उनका हँसानेवाला रंग अउनकी नसका आला जौहर था।

मौलाना साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

अब हमको कलीम और नअमीमा दोनों भाअरी बहनोंका हाल बयान करना चाहिये कि बापके घरसे निकलकर अउनपर क्या बीती। सो च्यूँकि कलीम पहले निकला, पहले अुसीका हाल बयान करते हैं। कअरी बार अुसको बापने बुलवाया; यहाँतक कि हारकर रुक़्ता लिखा। मौने बहुतेरा समझाया। भाअरीने बहुत कुछ कहा सुना लेकिन वह रुबराह न हुआ और जब देखा कि फ़हमीदा सालहाके अुतरवानेमें मसरूफ़ है आँख बचा बे पूछे बे कहे घरसे अिस तरह निकल खड़ा हुआ कि गोया अुसको कुछ ताल्लूक ही न था। शायद अुसके ज़हनमें भी यह बात अुस वक़्त न गुज़री होगी कि वह अुम्भ भरके वास्ते घरसे जा रहा है, और अज़ीज़ व अक़ारब जिनसे वह अुसे सर-सरी तौरपर जुदा होता है, जीते जी अुनको न देख सकेगा।

(कलीमका अपने बापके घर से निकल जाना)

शिवली

मौलाना शिवली नामानी अपने ज़मानेके बहुत ही सन् १८५७-१९१४ मशहूर और क़ाबिल बुजुर्गोंमेंसे थे। इन्होंने नज़्म और नसरके अलग अलग हिस्सोंमें अितना अुम्म्दा काम कर दिखाया है कि अुन्हें 'अदीबोंके बादशाह' कहा जा सकता है। वह शायर, मुवरीख (अतिहासज्ञ), तालीमके माहिर सब कुछ थे। मगर सभी हिस्सोंमें रिसाअी होनेके बावजूद वह ज़्यादातर अदब, तारीख और जुस्तजू (रिसर्च) अिन तीन बातोंके लिये ही खास तौरपर मशहूर हैं।

मौलाना साहब आजमगढ़ ज़िलेमें पैदा हुआ थे; मगर अिल्मकी तलाश-में रामपुर, लाहौर, सहरानपुर वगैरह क़अरी स्थानोंमें गये । अिन्हें किताबोंका शौक बेहद था । और हाफ़िज़ा (स्मरण-शक्ति) भी जबर्दस्त पाया था । वक़ालत, सरकारी मुलाज़िमत वगैरह बहुतसे काम कर चुकनेके बाद वह अलीगढ़ युनिवर्सिटीमें प्रोफ़ेसर हुआ । यहाँ सर सैयद, मौ. हाली वगैरह अलिमोंकी सुहबत और सर साहबके पुस्तकालयसे अिन्होंने क़ाफ़ी फ़ायदा अुठाया । यहीं रहकर अिनमें यह ख़याल पैदा हो गया कि अिस्लामकी प्राचीन शान व शौक़तके सुनहरे कारनामोंको कलमबन्द किया जाय । सर सैयदने भी अिस मुबारक कामपर अुनका अुत्साह बढ़ाया । अिसी असेमें अिन्होंने 'सुबहे अुम्मीद' मसनवी लिखी जो बहुत ही मक़बूल हुआ । सन् १८१२ अी. में शिवली साहबने रूम, शाम और मिस्रका सफ़र किया । वहाँसे अानेके बाद 'सफ़रनामा अे मिस्र रूम व शाम' नामकी मशहूर किताब अिन्होंने लिखी । अिसी सफ़रमें अुन्होंने अपनी 'अलफ़ारूक' नाम किताबकी तैयारी की । स. १८९७ अी. में सर सैयदके अिन्तक़ालपर दुखी होकर यह आजमगढ़ वापस चले गये । अिसके बाद कश्मीर, हैदराबाद (दक्षिण) जैसे दूर दूरके मुल्कोंके सफ़र करके अाखिरी अुम्रमें आजमगढ़ आ गये । 'नदवत अुल अुलमा' और 'दारुल मुसन्नफ़ैन' अिन दो संस्थाओंके पीछे अिन्होंने अपनी सारी जायदाद खर्च कर दी । अिन दो अंजुमनोंने अरे-बियाकी विद्याओं और अिस्लामी तहज़ीबको दुनियाके सामने सही तौरपर पेश किया । मौ. सैयद सुलेमान 'नदवी', मौ. हमीदुद्दीन, मौ. अब्दुल बारी, मौ. अब्दुल माजद वगैरह बहुत पुरजोश और अूँचे लेखक 'दारुल मुसन्नफ़ैन' ने उर्दूकी अदबी दुनियाको दिये हैं ।

मौलाना साहब सफ़ाअरी, सादगी और कलामकी खूबसूरतीको बहुत पसन्द करते थे । नख़रा और बनावटीपन अिनमें बहुत कम पाया जाता है । कारोबारी नस्रका बेमिसाल नमूना अिन्होंने पेश किया । अिनकी रचनाअें अितनी ज़्यादा हैं कि अुनके सिर्फ़ नाम लिखनेमें ही पूरा पन्ना ख़त्म हो जायगा । फिर भी सबसे ज़्यादा मशहूर किताबोंके नाम यह हैं:—

‘सिरात अ़ून नामान’ ‘अल गज़्ज़ाली’ ‘सिरात-अुन्नबी’ ‘सवानह अ़े मौलाना रुम’ ‘मुअज़्ज़िना अ़े ‘अनीस व दबीर’ ‘शेर अ़ुल अज़़म’ वगैरह ।

शिवली साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

यहाँकी अ़िमारतें हिन्दुस्तानकी अ़िमारतोंसे बिल्कुल जुदा बज़ाकी हैं । और मकानात अ़मूमन् सेह-मंजिला चौ-मंजिला हैं । सहन मुतलक नहीं होता । अ़िमारतें तमाम लकड़ीकी हैं । बड़े बड़े अ़मरा और पाशाओंके महल भी लकड़ीकेही हैं । और यही सबब है कि अ़क्सर यहाँ आग लगती है । कोअी महीना बल्कि हफ़्ता ख़ाली नहीं जाता कि दो चार घर आगसे जलकर तबाह न हों । और कभी कभी तो मुहल्लेके मुहल्ले जलकर ख़ाक-स्याह हो जाते हैं । आग बुझानेके लिये सल्तनतकी तरफ़से निहायत माकूल अ़हतमाम हैं । कअ़ी सौ आदमी ख़ास अ़िस काम पर मुकर्रर हैं । अ़ेक निहायत बलन्द मिनारा बना हुआ है जिसपर चंद मुलाज़िम हर वक़्त मौजूद रहते हैं किजिस वक़्त कहीं आग लगती देखें फ़ौरन ख़बर करें । अ़िस क़िस्मके और भी छोटे छोटे मिनारे जा बजा बने हुए हैं । जिस वक़्त कहीं आग लगती है, फ़ौरन तोपें सर होती हैं; और शहरके हर हिस्सेसे आग बुझानेवाले मुलाज़िम तमाम आलातके साथ मौके पर पहुँच जाते हैं । अ़नको हुक्म है कि बेतहाशा दौड़ते जायें । यहाँ तक कि अ़गर कोअ़ी राह चलता अ़नकी फ़पटमें आकर पिस जाये तो कुछ अ़िलज़ाम नहीं । मैने लोगोंसे दरयाफ़्त किया कि पत्थरकी अ़िमारतें क्यों नहीं बनतीं ? मालूम हुआ कि सर्दीके मौसममें सख़्त तकलीफ़ होती है और तन्दुरुस्तीको नुक़सान पहुँचता है ।

(कुस्तुनुनिया)

नवाब मुहासिन अ़ुल मुल्क

(स. १८३७-१८०७ अ़ी.) मुहसिन अ़ुल मुल्क नवाब सैयद मेहदी अ़ली अ़िटावेमें पैदा हुआ थे । अ़ेक लम्बे अ़रसे तक गवमेंटकी नौकरी करके यह हैदराबाद (द०) चले गये जहाँ अ़िनको काफ़ी नाम और पैसा हासिल हुआ । हैदराबाद रियासतमें अ़ुर्दू को सरकारी ज़बान

के स्थान पर बिठानेमें अिन्हींकी अनथक कोशिशें कारण हुईं । अिन्होंने अिग्लैंडका सफ़र भी किया था । बादमें यह अलीगढ़ चले गये जहाँ अिन्होंने अपनी शेष आयु कालेजके अिन्तवाम, सरपरस्ती, और तालीमी खिदमतोंमें खर्च की । अिनकी दो किताबें 'कानूने माल' और 'कानूने फ़ौजदारी' अुस ज़मानेमें बहुत मशहूर थीं । अलीगढ़ जानेके बाद 'तहज़ीब अुल अिख़लाक़' में वह बराबर लिखा करते थे । अुनके लेखोंके कअ़ी संग्रह शायी हो गये हैं । अिनकी ज़बानमें फ़ारसी लफ़्ज़ कसरतसे पाये जाते हैं । फिर भी वह बहुत जोरदार है ।

मौलाना आज़ाद और दिल्ली कॉलेज

जिस तरह पिछले अध्यायमें हमने देखा कि सर सैयद और अिनके साथियोंने मिलकर अुर्दू ज़बानकी कितनी अच्छी सेवा की । अुसी तरह अिस अध्यायमें हम यह देखेंगे कि दिल्ली कॉलेजसे सम्बन्ध रखनेवाले लेखकों और कवियोंने अुर्दूकी किस किस तरह सेवा की । पिछले अध्यायमें सर साहब केन्द्र थे जिनके आसपास दूसरे लोग जमा हो गये थे; मगर यहाँ तो सभी अलग अलग हैं जिनमें आज़ाद बहुत ही मशहूर हैं ।

आज़ाद

मृत्यु-सन् १९१० श्री. शम्सुल अुल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' पिछली सदीकी तीसरी दहाअीमें दिल्लीमें पैदा हुअे थे । यह अेक ज़बर्दस्त शायर भी थे । अिनकी शायरीका ज़िक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है । दिल्ली कॉलेजके शुरू शुरूके विद्यार्थियोंमें यह बहुत मशहूर थे । ज़िन्दगीके प्रारम्भमें अिन्होंने तालीमके महकमेमें मुलाज़िमत अख्ति-यार की और बादमें लाहौरके गवर्मेंट कॉलेजमें अरबीके प्रोफ़ेसर मुकर्रर हुअे ।

जिस तरह अुर्दू नज़्ममें अेक ज़बर्दस्त अिन्किलाब पैदा करनेमें अिन्होंने हाथ बँटाया अिसी तरह भी ये बहुत अँचा दर्जा रखते थे । 'अंजुमने पंजाब' और 'अुर्दू सभा' के कायम करनेमें अिन्होंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया । अिन संस्थाओंने पंजाबमें अुर्दूकी तालीम और तरक्की के लिये बहुत कारगर (सफल) कोशिश की । यह दो मर्तबा अीरान गये थे । अिन्हें फ़ारसीसे खास लगाव था जिससे अुनकी वह तसनीफ़ें जो फ़ारसी ज़बानके मुताल्लिक हैं, मसलन् 'सखुनदाने फ़ारिस' और 'निगारिस्ताने फ़ारिस' बहुत ही दिलचस्प और जानकारीसे भरी हुअी है ।

सन् १८८६ आ. से अिनमें कुछ पागलपनके चिह्न दिखायी देने लगे थे जिससे अुम्रके आखिरी हिस्सेमें वह किसी अदबी कामके लायक न रहे । अिस पागलपनका कारण अुनकी प्यारी बेटीकी बेवक़्त मौत बताया जाता है ।

आज़ादकी लेखन-शैली तो बिलकुल बेजोड़ है । अिसकी खास सिफ़त यह है कि अरबी, फ़ारसीके ग़ैरमानूस (अपरिचित) शब्द और ढंग अुसमें बहुत कम मिलते हैं । हिन्दी भाषाकी सादगी और बेतकल्लुफी, अंग्रेज़ीकी साफ़गोअी और फ़ारसीका हुस्न और खूबसूरती यह तीनों बातें अुसमें मिली-जुली होती हैं । अिसी तर्ज़पर अिनकी सारी तसनीफ़ें हैं । ग़ासकर 'आबे हयात' की ज़वान तो बेहद प्यारी है । अिस किताबमें अुर्दू शायरोंके दिलचस्प हाल बयान किये गये हैं । हालाँकि तारीख़के लिहाज़से अुसमें कअी ख़ामियाँ हैं मगर अुसकी ज़वान तो पढ़नेवालोंपर जादूका असर करती है । अिनकी बनाअी हुअी फ़ारसी और अुर्दूकी रीडरें, अुर्दूका कायदा, क़वायदे अुर्दू वग़ैरह स्कूली किताबें भी निहायत दिलचस्प और अूँचे दर्जेकी हैं । 'क़सिसे हिन्द' और 'नैरंग ख़याल' में अिनके लिखे हुअे और अनुवादित क़िस्से मुरत्तिब (संग्रहीत) किये गये हैं । दिल्लीमें पैदा होने और तालीम पानेके अलावा अिनका दिल्लीसे कोअी खास ताल्लुक़ न रहा; मगर अिन्हें देहलीसे बहुत ही प्रेम था । सर सैयदके असर से यह दूर थे । आज़ाद साहबकी ज़वानके जौहर मुलाहिज़ा फ़रमाअिये:—

"अीरान अेक़ कुदरती बहिश्त है । वहाँ जिन जिन चीज़ोंकी बहुतात है वही अुसकी (अिन्शापरदाज़ीका सामान है । गुल, बुलबुल, सब्ज़ा, शबनम) बरफ़, ओले, मुर्ग़ज़ार, आबेरवाँ, गुलशन, चमन, दरख़्त, जवानाने चमन, मुर्ग़ाने चमन वग़ैरह वग़ैरह । अिन तरकीबोंमें हज़ारों नाजुक और लतीफ़ ख़यालात अदा करते हैं । गुलाबके फूलोंमें जो ज़र्दी है अुसे ज़रेगुल कहते हैं । गुल अपना खज़ाना लुटाता और हँसाता है मगर गुब्बा मुट्ठी बंद करके अपनी ज़रदारीपर खुश होता है और मुसकिराता है । शबनम बेसबातीपर रोती है । जिस तरह बुलबुल गुलकी आशिक़ है, क़मरी सरोकी शैदा है, अुसका गेरुवा लिबास है, नग़माअे लालाज़ार हैं, मगर सब्ज़ा

बेगाना है ।

जमजमोंकी कसरतसे उसका नाम 'हज़ार दास्तौं' 'हज़ार आवाज़' रखा है । बीसियों सिफ़तें खुशनुमा और खुशआयन्द निकाली हैं । मुर्ग शबख़्वाँ, खुश आहंग, आतिश नवा वगैरह वगैरह ओक ओक तरक्कीबसे कअरी कअरी मज़मून शायराना जुदागाना पैदा किये हैं । कोह, सहरा, मुर्गज़ार, चदमे, आबेरवाँ की कुदरतके अजायबख़ाने हैं । अिनसे हज़ार दो हज़ार खयालात ज़बानमें परवाज़ करते फिरते हैं ।

(औरानकी बहारे नौरोज़)

मौलाना ज़काअुल्ला

स. १८३२-१९१० श्री. शम्सुल अल्मा मौलाना ज़काअुल्ला ख़ाँ दिल्ली के पुराने कॉलेजके मशहूर शागिर्दोंमें थे । आज़ाद और नज़ीर अहमद के यह साथी थे और तीनों शम्सुल अल्मा थे । यह एक अर्से तक आगरा कॉलेजमें फ़ारसी और अरबीके प्रोफ़ेसर रहे । कुछ दिन तक डिप्टी कलक्टर रहकर बादमें यह अलाहाबादके म्युअर कॉलेजमें अरबी और फ़ारसी ज़बानोंके प्रोफ़ेसर हो गये । अिनकी तसनीफ़ें बहुत हैं जिनकी तादाद डेढ़सौसे कम न होगी । लेकिन सबकी सब स्कूली और कॉलेजकी किताबें हैं, उनमें अरबी हैसियत बहुत कम है । 'तारीख़े हिन्दोस्तौं' तेरह जिल्दोंमें, 'मुहमाते अज़ीम' 'अ़ने केसरी' 'फ़रहंगे फिरंग' वगैरह किताबें स्कूलों और कालेजोंमें बहुत मज़बूत थीं । अिनकी शैली निहायत साफ़, सुलभी हुआयी और बनावटीपनसे बिल्कुल پاک है । उस वक़््तके मशहूर रिसालों में यह बाक़ायदा मज़मून लिखनेका काम भी करते थे ।

*

*

*

दिल्ली कालेजने नये अिल्मों और फ़नोंकी तरक्क़ी और रिवाज़में काफ़ी मदद दी है । पहले पहल तो अिसमें अर्दू और अरबी-फ़ारसीकी पुराने ढंग पर पढ़ाअ़ी होती थी । मगर स. १८२७ श्री. में अंग्रेज़ीका दर्जा खुल गया । उस वक़््तका यह रिवाज़ था, मामूली अंग्रेज़ी पढ़े लिखे आदमीको

बड़ी बड़ी तनख्वाहकी नौकरियाँ मिलती थीं जिसलिये बहुतसे लड़के अंग्रेजी पढ़ने लगे ।

अंग्रेजी तालीमने शुद्ध साहित्य पर काफ़ी असर डाला । अब तक अदूर लिखने और पढ़नेवालोंका दायरा बहुत ही महदूद था सो अब बसीअ हो गया । जिसके साथ ही ज़बान साफ़, सादा और आसान होती गयी जिसका सबब ज़्यादातर स्कूली किताबें ही थीं । अिम बातका खयाल अदूर अदीबोंके दिलों और दिमागोंमें पैदा होने लगा कि अिश्क़, दर्द और तिलस्मको छोड़ दुनियामें दूसरी भी बहुतसी चीज़ें मौजूद हैं । लेकिन साथ साथ कुछ बुरा-अियाँ भी आ गयीं । मसलन् हिन्दुस्तानियोंको अदना और अंग्रेजोंको आला समझकर अुनकी हरेक बातकी हँसी झुड़ाना, और यूरोपियनोंकी हर बातको अच्छा समझकर अुसकी वगैर समझे वूझे नकल करना वगैरह बातें अदबमें आने लगीं । गैर मानूस अंग्रेजी लफ़्ज़ भी ज़बानमें लापरवाही से बेहद घुसेड़े गये जिनको निकालना अब मुश्किल हो गया है ।

प्रो. रामचन्द्र

दिल्ली कालेजमें यह विज्ञानके बहुत मशहूर प्रोफेसर थे । स. १८५३ अी. में यह आसाअी बन गये थे जिससे ग़दरके जमानेमें अिनके जानके लाले पड़े थे; मगर अपने दोस्तों और शागिर्दोंकी मददसे यह बच गये । बहुत ही अक्र-मन्द और होशियार आदमी थे । मौ. नज़ीर अहमद और अुनके साथी प्रो.-रामचन्द्रके अज़ीज़ शागिर्दोंमें थे । विज्ञान पर अिन्होंने जो किताबें लिखी हैं वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण हैं । 'किताबे अजायबे रोज़गार' और 'तज किरात अुल कामिलीन' अिनकी दो मशहूर नम्रकी किताबें हैं । प्रोफेसर साहबने दिल्ली कालेजमें अेक अदबी अंजुमन खोली थी जहाँसे काफ़ी मुफ़ीद किताबें शायी हुईं ।

मौलाना गुलाम अिमाम शहीद

शहीद साहब दिल्ली कालेजके प्रोफेसर थे । अिस्लामी मज़हबसे ताल्लुक रखनेवाली बहुत सी किताबें अिन्होंने लिखीं जिसमें 'अिन्शा अे बहारे बेख़िज़ाँ' और 'मजमूअ़ा अे मौलुद शरीफ़' मशहूर हैं । यह बहुत रोशन-खयाल और

सुसंस्कृत आदमी थे। अन्हें 'महाहे नबी' और 'आशिके रसूल' कहा जाता है।

मौ. अिमामबख्श सहबात्री, मुंशी गुलाम गौस 'बेखबर', डा. सय्यद बिलग्रामी, सै. हुसेन बिलग्रामी, मौ. अजीज मिर्जा, मौ. अब्दुल हक, अब्दुल मजीद, लाला श्रीराम वगैर मशहूर लेखक इसी जमानेके हैं। अिनमेंसे कुछ लोगोंका जिक्र तफ्सीलके साथ आगे किया जायगा।

अध्याय अठारहवाँ

दूसरे लोगोंकी खिदमतें

अलीगढ़ कॉलेज और दिल्ली कॉलेज के दायरेमें न आनेवाले कुछ साहबोंका जिक्र इस अध्यायमें किया जायगा।

मौलाना सैयद अहमद

देहलवी

मौलाना साहब अपनी मशहूर लुगत

स. १८४६-१९२० श्री. 'फ़रहंगे आसफ़िया' के मुसन्निक होने की वजहसे अर्द्धाँ पब्लिक में अक़ खास शुहरत रखते हैं। इस किताबको पूरा करनेमें चौदह साल लगे थे। निजाम हैदराबादसे इस लुगतके वास्ते पाँच हजार रुपये अनाम और पचास रुपये माहवार पेन्शन मिला था। इसीसे इसका नाम 'फ़रहंगे आसफ़िया' है। डॉ. फ़ैलेनकी इंग्लिश-यूर्दू डिक्शनरी सैयद साहबने ही सात सालमें तैयार की थी। इन कामोंके अलावा इन्होंने और भी बहुतसी किताबें लिखीं जिनमें 'तकमील अल कलाम' 'तहकीक अल कलाम' 'रसखान' 'रीतिबखान' 'लुगातअनुनिसा' वगैरह मशहूर हैं। इनकी ज़बानमें कोअी खास बात नहीं पायी जाती। इनका नाम इनकी ज़बर्दस्त मेहनतके कारण ही हुआ है।

सैयद साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

“अब रोज़बरोज़ इसकी तराश ख़राश होने और योमन फ़योमन रौनक बढ़ने लगी। फ़ारसी के मुहाबरात हिन्दी में तर्जुमा हुअे। अरबी-फ़ारसी अस्मों और मसदरोंकी अलामत लगा कर अर्द्ध बना लिया। अमीर खुसरोने तो यहाँ तक अजितहाद किया कि चलनेसे चलीदन बनाकर फ़ारसीमें रायज कर दिया। हत्ताकि अब तर्जुमों और तसानीकका

दफ़्तर भी खुल गया। किसीने कुरानेशरीफ़ का तर्जुमा किया किसीने शहादत नामा लिखा। किसीने चहारदरवेश सँभाला कोअी नज़मपर झुक पड़ा।

(अर्दू ज़बानकी पैदाअिश और तरक्की)

अमीर अहमद 'मीनार्नी'

स. १८२८-१९०० अ.।
 अ़ेक ग़यलेखककी हैसियतसे यह अ़ुतने मशहूर नहीं है जितने कि अ़ेक शायर-की हैसियत से हैं। अ़िनका तफ़सीलवार ज़िक्र नज़मके हिस्सेमें आ चुका है। अ़िनके ख़त काफी मशहूर हैं हालाँकि वह ग़ालिबकी अपेक्षा तादाद और दर्जेमें बहुत कम हैं। रामपुरके चारसौ दस शायरोंके बारे में अ़िन्होंने अ़ेक किताब लिखी है जिसका नाम 'अ़िन्तैख़ाबे यादगार' है। अ़िनके अ़लावा और भी दो किताबें अ़िनकी लिखी हुअी हैं। अ़िनके नाम हैं 'हिदायत अ़ुस् सुलतान' और 'रशाद अ़ुस् सुलतान'। यह दोनों किताबें नवाब वाजिदअ़ली शाहके हुक्मसे लिखी गयी थीं और अ़िनकी वज़हसे अ़मीर साहब अपने ज़मानेमें बहुत मशहूर हो गये थे।

अ़मीर मीनार्नीकी ज़बानका नमूना देखिये:--

मार्च स. १८८२ अ.।

फ़र्क़ीरनवाज़ कहूँ या अ़मीरनवाज़ कहूँ ? अ़मीरनवाज़ कहनेमें आपकी तरक्की मरातिब तो है मगर अपनी निस्बत अ़मारतकी अ़िजाफ़ते ख़ुदनुमाअ़ी है और वह भी भूठी ख़ुदनुमाअ़ी; अ़िस लिये कि बराय नाम अ़मीर हूँ और दर हक़ीक़त फ़र्क़ीर हूँ।

लिखना क्या था क़लम बहककर किधर निकल गयी। मुआफ़ कीजिये और मतालबका ज़वाब लीजिये कि अ़नायतनामा आया; मिन्नत पर्ज़ीर फ़रमाया।

अ़ल्ला आपकी अ़ुम्र में अ़ैसी बरक़त दे कि मेरे अ़िस मतलेके मसदाक़ हो जाय:—

बाक़ी न कोअ़ी दिलमें अिलाही हवस रहे ।

बारह बरसके सिनमें वह लाखों बरस रहे ॥

अुर्दू फ़ारसी कभी कभी ग़ज़ल मुफ़्फ़को भी भेज दिया कीजिये कि देख कर खुश हो जाया क़हूँ । और ख़त लिखनेमें बहुत देर न फ़रमाया कीजिये कि जी अफ़सुर्दा हो जाता है । अपने याराने अंजुमनको मेरा सलाम और शौक़या-यबाना कहिये मुहम्मद अहमद तसलीम गुज़ार हैं । कमाल ताज़ीलमें यह चंद सतरें लिख दीं । बेरब्ती और बदख़तीका अुज़्र क़बूल हो ।

राक़िम आसम अमीर फ़कीर अफ़ायना
(बनाम सैयद जाहिर हुसैन, रअ़ीस सहारनपूर)

मौ. वहीदुद्दीन सलीम

मृत्यु-स. १९२८ अ़ी. मौलाना साहब पानीपतके रहनेवाले थे । यह सर सैयदके दोस्त और अनुयायी थे । और उनके साथ मरते दम तक रहे । अुर्दू ज़बानमें अच्छे अच्छे हिंदी शब्दोंको ख़पानेकी कोशिश करनेवालोंमें यह भी अ़क़ थे । अ़िनकी शैलीनिहायत जोरदार और पुरमानी थी । उस वक़््तके मशहूर रिसालोंमें यह बहुत अच्छे अच्छे मज़मून लिखा करते थे । अ़िनके मशहूर लेख 'तुलसीदासकी शायरी' 'अरवकी शायरी' वगैरह हैं जो रिसाला 'अुर्दू' में शायी हुए थे । 'वज़अ़े अ़िस्तलाहात' नाम की अ़िनकी किताब भी काफ़ी मक़बूल हो गयी है । हैदराबादकी अुस्मानिया युनिवर्सिटीमें अ़िन्होंने अ़ेक़ अ़सैतक अुर्दूके प्रोफ़ेसरका काम किया था ।

मुंशी दयानारायण निगम

जन्म मुंशी साहब कानपुरके अ़ेक़ प्रतिष्ठित कायस्थ ख़ानदान सं. १८८५ अ़ी. से हैं । स. १९०३ अ़ी. में बी. अ़े. पास करके अ़िन्होंने मुंशी शिवव्रतलाल बर्मनका शुरू किया हुआ मशहूर रिसाला 'ज़माना' अपने हाथमें ले लिया जो अब तक निहायत कामयाबीसे जारी है । मुंशी साहब अ़ेक़ संचालक और दृढ़लेखककी हैसियतसे नौजवानोंके लिए अच्छे मार्ग-दर्शक हैं कि वह आपकी मिसालको देखें और आपकी कामयाबीसे सबक़

हासिल करें। जबानकी सच्ची खिदमत करनेवाले अखबारोंमें 'जमाना' श्रेक है। अिसमें काबिल हिन्दू और मुसलमान दोनों लेख लिखा करते हैं। मुन्शी साहब हिन्दुस्तानी अैकडेमीके पुरजोश और सरगर्म मेंबर भी है।

लाला श्रीराम देहलवी

जन्म कहा जाता है कि लालाजीका खानदान राजा टोडरमल स. १८७५ अी. के खानदानके साथ करीबी ताल्लुक रखता है। यह भी आजाद और हालीके समकालीन और दोस्त हैं। अुर्दू का अेक बहुत मशहूर तज्जक़िरा 'हज़ार दास्तों' या 'खुमखाना अे जावेद' के यह लेखक हैं। यह किताब अुर्दू के शायरोंके हालोंका खजाना और अुनके चुने हुए कलामका संग्रह है। अिसे शायरोंकी तारीफ़की जान समझना चाहिये या यूँ कहें तो मुनासिब होगा कि वह अुर्दू नज़्म का 'अेनसाअिकलोपीडिया' है।

मौलाना अब्दुल हक़

आनररी सेक्रेटरी आजकलके मशहूर फ़ाज़िल और मुंसन्निक अंजुमने तरक्क़ीअे अुर्दू (हिंद) मौ.अब्दुल हक़ साहब 'अंजुमने तरक्क़ीअे अुर्दू' के लम्बे अरसेसे आनररी सेक्रेटरी रहे हैं। रिसाला 'अुर्दू' के यह काबिल संचालक हैं। अिन्होंने अंजुमनके ज़रिये कितनी ही पुरानी किताबें शायी की हैं और कितनोंको फ़ाज़िलाना दीबाचे लिखे हैं। अुर्दू की सबसे प्रामाणिक व्याकरण 'क़वायदे अुर्दू' अिन्होंने ही लिखा है। यह अखबारों और रिसालोंमें जो लेख लिखते हैं वह निहायत आला दर्जेके और जानकारी से भरे हुअे होते हैं। अिस तरह तमाम अुम्र अुर्दूकी खिदमदमें बिता देनेवाले शायद ही कोअी होंगे। हैदराबाद (दक्षिण) में अुर्दू का जो अितना दौर दौरा हो गया है अुसमें मौलाना साहबका बहुत बड़ा हिस्सा है।

अिस ज़मानेके जो मशहूर शायर और नस्सार हैं अुनमें नीचे लिखे हुअे सज्जन अपना खास दर्जा रखते हैं:—शेख़ अब्दुल कादर, पं. मनोहरलाल जुत्शी, पंडित बिशननारायण 'दर' मिर्ज़ा ज़ाफ़र अलीख़ाँ साहब, असर लखनवी, अहसन माहरवी, सुन्दसरत जोश, मौ. हाशिमि, मेहदी हसन वगैरह।

अध्याय अन्नीसवाँ

कहानी और उपन्यास

पुराने किस्से

जैसी कि अक्सर हिन्दुस्तानी ज़बानोंकी हालत है, अर्द्धमें भी अंग्रेजी तालीमका पूरा असर जम जानेसे पहले पुराने ढंगके रस्मी किस्से चले आ रहे थे। वह या तो असली फ़ारसीसे लिये जाते थे या फ़ारसीके जरिये संस्कृतसे लिये हुआे होते थे। अक्सर अर्द्ध शायरों और नस्सारीने संस्कृत सीखनेकी तकलीफ़ गवारा नहीं समझी, जिससे अच्छी अच्छी संस्कृतकी किताबोंका तर्जुमा करनेके लिये उन्हें या तो अंग्रेजीके पाँव पकड़ने पड़ते थे या फ़ारसीके। इस ज़मानेके किस्सोंमेंसे निन्यानवे फ़ी सदी किस्से अरबी और फ़ारसीसे लिये गये थे और बाकी श्रेक फ़ी सदीमें वह किस्से आते हैं जो संस्कृत और फ़ारसीके किस्सोंको अधर अधरसे घटा बढ़ाकर नये ढंगपर पेश किये गये। कभी कभी हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती वगैरह भाषाओंसे भी तर्जुमे किये जाते थे। इन किस्सोंमें ज़्यादातर देव (राक्षस), परियाँ, जादू, तिलस्म, जादूगरोंकी लड़ाइयाँ, हुस्न व अशक़की घटनाओं, आदमीका जानवर और जानवरका आदमी बन जाना वगैरह हिम्मत और बहादुरीसे भरी हुआ और दिलको लरजाने व दिमागको चकराने वाली चीज़े ही होती थीं। बयान करनेका ढंग सबका वही टका बंधा मामूली होता था। वही वही चीज़ें बराबर आती थीं जिन्हें पढ़कर ज़िन्दा दिल खूब जाय। अजीब व गरीब चीज़ोंका जिक्र तो बिलकुल आम था। ऐसी हालतमें चरित्रके चित्रण, और भावोंके प्रदर्शनका कहीं पता भी न हो तो कोअी अचम्मेकी बात नहीं। इन किस्सोंमें यह ज़्यादा मशहूर हैं

(१) अलिफ़ लैला—यह अ़ेक़ हज़ार लम्बी लम्बी कहानियोंका सिल-सिला है। (२) अमीर हमज़ा:—यह अ़ेक़ बहुत लम्बी, दिलक़श और हिम्मत से भरे हुए कारनामोंकी कहानी है। अ़िसके लेखक 'अबुलफ़ैज़ी'ने यह अ़क़बर बादशाहके लिये फ़ारसीमें लिखी थी। (३) बेताल पच्चीसी (४) बोस्टाँ ख़याल (५) क्रिस्सा हातिमताअ़्त्री (६) सिंहासन बत्तीसी (७) गुलबकावली-वग़ैरह।

अ़िसके बादकी सबसे मशहूर कहानी मिर्ज़ा रज़बअ़ली बेग़ 'सुरूर' की 'फ़िसानाअ़े अ़जायब' है जिसका ज़िक़ हम पीछे कर चुके हैं। हालाँकि अ़िनकी तर्ज बहुत कुछ पुरानी है, मगर फिरभी अ़िसने अ़दबी दुनियामें अ़ेक़ नयी रोशनी फैला दी। अ़िसकी घटनाओं बिलकुल मामूली और ज़बान निहायत बनावटी और पेचीदा है। अ़िस कमीको मौ. नज़ीर अ़हमदने दूर कर दिया। अ़िनके अपन्यास 'अ़ुपन्यास' कहे जानेके लायक़ हो गये। अ़िन्होंने अ़फ़सानोंका दर्जा भी काफ़ी बलन्द कर दिया। मौलाना साहबके नावेलोंमें ही आजके ज़मानेके नावेलोंकी झलक़ दिखायी देती है। घटनाओंका सिलसिला, चरित्रचित्रण वग़ैरह चीज़ें अ़िन्तदायी हालतमें अ़िन्हींकी तसनीफ़ोंमें दिखायी देती हैं।

पिछले ज़मानेमें अ़ुर्दूमें तीन ज़बर्दस्त अ़ुपन्यासकार हो गये हैं। वह हैं 'मौलाना नज़ीर अ़हमद,' 'सरशार' और 'शरर'। अ़िनमेंसे मौलाना साहबका ज़िक़ तो हम कर चुके हैं। अब सरशार और शररपर ग़ौर करेंगे। अ़िनके अलावा अ़िस ज़मानेके और भी बहुतसे लेखक हैं ज़िनमें, मुन्शी सज़्जाद हुसेन, मिर्ज़ा मन्ज़ूबेग़ 'आशिक़,' मुंशी ज़वालाप्रसाद बर्क़, नवाब सैय्यद मुहम्मद अ़ाज़ाद, मिर्ज़ा मुहम्मद हादी 'रुसवा', मुंशी धनपतराय 'प्रेमचन्द्र', ख़्वाजा हसन निज़ामी, पं. सुदर्शनजी, राशिद अ़ुलख़ैरी वग़ैरह बहुत मशहूर हैं। अ़िनमेंसे बाज़का मुख़्तसर ज़िक़ आगे किया जायगा।

अ़ुपन्यास

पंडित रतननाथ दर

'सरशार'

स. १८४६-१९०२ अ़ी. पंडितजीका असली वतन कश्मीर था मगर वह लखनअ़ूमें रहते थे। गुज़रता सदीके आख़िरमें यह अ़ेक़ अ़जीब ज़िन्दादिल और बाक़माल शख़्स गुज़रे हैं। अ़िन्हें

वचनसे ही लिखनेका शौक था और 'मरासला कश्मीरी' 'अवधपंच' 'मरातुल हिन्द' वगैरह अखबारोंमें लिखा करते थे । अर्द्धके अलावा अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी और हिन्दी अिन चार ज़बानोंसे यह वाकिफ़ थे । तर्जुमा करनेमें भी बड़ी निपुणता रखते थे ।

स. १८७८ आ. में यह 'अवध अखबार' के ऐडीटर हुअे जिसमें अन्होंने अपनी मशहूर तसनीफ़ 'फ़िसाना अे आज़ाद' का सिलसिला शुरू किया । यह रचना स. १८८० आ. में अलाहिदा किताबकी सूरतमें शायी हुअी ।

अिस किस्सेका प्लॉट सादा, सुलभा हुअा और बड़ा मजेदार है । मज़्मूनकी सजधज तो ग़ज़ब की है । शैली निहायत बेतकल्लुफ़, आसान, ताज़ा और नैचरल है । हँसी मज़ाक़ और विनोद तो अिसमें कूट कूटकर भरा हुअा है ।

किताबको अुठाकर कहीं बीचमेंसे भी पढ़ने लगे तो हँसते हँसते पेटमें बल पड़ जायेंगे । अुस ज़मानेके लखनऊकी सोसायटीकी दूबदू तस्वीरें खींचने में अन्होंने कमाल किया है । अिससे अच्छी और सही तस्वीरें किसीने नहीं खींची हैं । वास्तविकताके साथ साथ अन्होंने अतिशयोक्तिसे भी काम लिया है जिससे परिहास और मज़ा बेहद बढ़ जाता है । अिनकी यह खासियत है कि अन्होंने अपने अुपन्यासोंमेंसे ग़ैर फ़ितरी (अ़प्राकृतिक) बातोंको खारिज करके अिन्सानी ज़िन्दगीकी मामूली-सी घटनाओंमें अेक ग़ैर मामूली दिलचस्पी पैदा कर दी । अिस किताबका तर्जुमा हिंदीमें 'आज़ाद कथा' के नामसे प्रेमचन्दजीने किया है ।

'फ़िसाना अे आज़ाद' के अलावा और भी बहुतसे किस्से सरशारने लिखे हैं जिनमें नीचे लिखे बहुत मशहूर हैं ।

'सैरे कोहसार' 'जामे सरशार' 'कामिनी' 'खुदाअी फ़ौजदार' 'बिडुड़ी दुलहिन', 'पी कहाँ ?' वगैरह ।

सरशारकी ज़बान साफ़, सुलभी हुअी, मुहावरेदार और जोरदार है । मगर अिनमें त्रुटियाँ भी कम नहीं थीं । अेक तो अुनके किस्सोंके कथानक अेक सूत्रमें बँधे हुअे नहीं होते और घटनाओंमें भी अक्सर सिलसिला टूटा

हुआ होता है। अिनमें भावोंकी भी कमी है और फ़िलसुफ़ियत और संस्कारिताकी खुशबू शायद ही मिलती है। कहीं कहीं वह अशिष्ट बातें भी लिख गये हैं।

सरशार और सुरूरका मुकाबला बड़ा दिलचस्प है। 'फ़िसानाअ्रे अजा-यब' और 'फ़िसानाअ्रे आज़ाद' दोनोंकी तस्वीरें लखनअूकी हैं और दिल-चस्पीमें कोअ़ी भी अ़ेक दूसरे से कम नहीं है। लेकिन सुरूरने चीज़ोंका वर्णन किया है और सरशारने आदमियोंका। हूबहू तस्वीरें खींचना ही सर-शारका मक़सद था। अिसलिये अुन्होंने अच्छाअियाँ और बुराअियाँ दोनोंको किसी तकलुफ़के बिना जाहिर किया। अिसके विपरीत, सुरूरको आयडिथल तस्वीरें खींचनी थीं अिसवास्ते वह अच्छाअियोंको दिखाते वक़्त बुराअियोंको छिपाते थे। सरशारकी ज़बान और शैली कुछ ज़्यादा आधुनिक थी और सुरूर कुछ पुराने ढंगकी ज़बान और तर्ज़के मालूम होते हैं।

आख़िरी अ़ुम्रमें सरशार हैदरबाद (द०) चले गये थे, जहाँ अुन्होंने अ़िन्तकाल किया। अ़िन्तकालसे कुछ समय पहले अ़िन्होंने शराब पीनेकी हद कर दी थी और यही अुनकी अकाल-मृत्युका कारण था। यहाँ अिस बातका ज़िक्र भी करना चाहिये कि सुरूरकी मौतका बाअिस भी मैनोशी (मदिरापान) ही था।

अुर्दू अुपन्यासकी अंग्रेज़ी तर्ज़पर ले जानेका फ़ख्र सरशारको ही हासिल है। अिनकी स्मरण-शक्ति बहुत ज़बर्दस्त थी और धार्मिक पक्षपात तथा मज़हबियतसे यह बरी थे। गर्ज़कि सरशार अ़ेक ज़बर्दस्त जर्नालिस्ट, मशहूर मुसन्नफ़, बुद्धिमान भाषाशास्त्री और अ़ेक ख़ास तर्ज़के आविष्कारक थे। वह अ़ेक खुशगो शायर भी थे।

सरशार साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

“आज़ाद:—(अ़ेक मुसलमान से) क्यों भाअ़ीसाहब यह भीड़ कैसी है ?

मुसलमान:—अज़ी हुज़ूर ज़मानेकी नैरंगी है।

दूसरा:—हात् तेरेकी।

तीसराः--दाम जसो मै बगरिफ्त व खरकाश्रे सालोस ।

कुजास्त दैरे मुगाँ व शराब नाब कुजा ॥

हिन्दूः--नारायण ! नारायण !! बुरी हुआ ।

खोजीः--क्या बुरी हुआ ? कुछ हम भी तो सुनें !

तमाशाश्रीः--यह सुननेकी बातें नहीं हैं । यह ठीकी बातें हैं कि अगर सुनें भी तो कान बन्द कर ले । अबरत ! अबरत !! अबरत !!!

आजादः--(अक कान्स्टेबलसे) क्यों भाभी जवान, यह कोई फक्कीर है ?

कान्स्टेबलः--अजी हुजूर यह फक्कीर नहीं चण्डाल हैं । अब आज अनिकी मौत हो जायेगी ।

खोजीः--लाहौल विला कूवत । ऐसे नामाकूल आदमियोंसे साबिका पड़ा है कि तोबा ही भली । असल बात कोअरी बताता ही नहीं । तोबा तोबा सब कर रहे हैं । जान अजाबमें है । पछें किससे ? (आगे बढ़कर) हम खुद फक्कीर ही से पूछते हैं । क्यों बाबाजी यह क्या हुआ ? कुछ हम भी तो सुनें !

अक आदमीः--यह बाबाजी हैं आपके ?

[फिसाना अे आजाद]

मौलाना मुहम्मद अब्दुल हलीम 'शरर'

सन् १८६०-१९२६ आ. शरर साहब लखनऊके रहनेवाले थे । लेकिन अन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा मटियाबुर्ज (कलकत्ता) में हासिल की थी । अन्नीस वर्षकी अुम्रमें यह लखनऊ वापस आये । सन् १८८७ आ. में अन्होंने अपना मशहूर रिसाला 'दिलगुदाज' जारी किया जो कअी बार बंद होकर फिरसे शुरू होता रहता था । अिससे बहुत आला दर्जेके मजमून आते थे जिनमेंसे बहुतेसे अुर्दूके कोर्सोंमें लिये गये हैं । 'दिलगुदाज' में नांवेलेनवीसीका सिलसिला भी अन्होंने शुरू किया था ।

शरर साहब अुर्दू अपन्यासकारोंमें अक बहुत अूँचा दर्जा रखते हैं । तारीखी—और खासकर पुराने अिस्लामसे ताल्लुक रखनेवाले तारीखी-नावलोंमें तो यह अपना सानी नहीं रखते । अिस किस्मके अपन्यासोंकी

तादाद करीब तीस है जिनमें 'हसन और अंजलीन', 'फिदौसे बरी' 'मंसूर मोहना' वगैरह बहुत ही मशहूर हैं। अिनके अलावा चंद सामाजिक उपन्यास भी अिन्होंने लिखे हैं। मसलन् 'गरीबका चिराग', 'हाँ', 'नहीं', 'लाला खुदरू', 'देहातकी लइकी' वगैरह।

अिनके विषय बड़े अजीब व गरीब होते हैं जिनपर उनसे पहले किसी ने कलम नहीं झुठाया था। 'महशर' 'दिलगुदाज' 'मुहजब' 'अितहाद' वगैरह कुछ आठ नअू हफ्तावाराना और माहवाराना अखबार अिन्होंने शुरू किये थे जो चंद रोज चलकर बंद पड़े। अिनकी रचनाअें भी कोअी अेक सौ से कम न होंगी। हिन्दू-मुस्लिम अेकताके यह पूरे हामी थे।

अिनकी ज़बान साफ़ सादा और रोजमर्राकी होती है। ज़बान और मज़्मून दोनों रोजमर्राके होनेकी वजहसे अिनके नावेल बहुत मक्बूल हो गये। नावेलको अशिष्ट और भद्दे लफ्ज़ों और बेहूदा मज़्मूनोंसे अिन्होंने पाक किया। यह सिर्फ़ अेक नावेल-निगार ही न थे बल्कि मुवरिख़, अदीब और जबर्दस्त जर्नेलिस्ट भी थे। अिन्सानी भावोंपर अिन्होंने अिस तरह और अितना अधिकार जमाया है कि जिस किस्मके भाव चाहते हैं अपने उपन्यास पढ़नेवालोंके दिलमें पैदा कर देते हैं।

मिर्ज़ा मुहम्मद हादी

'हसबा' अिन्होंने भी काफ़ी उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'अुमराव जान अदा' बहुत आला दर्जेका है। बाक्रायदा कथानक चरित्र-चित्रण वगैरह बातें अिसमें साफ़ तौरपर नजर आती हैं। अितनी दिलचस्पी वाक्यों की कसरत और अिन्सानी फ़ितरतकी अितनी सच्ची तस्वीर शायद ही किसी दूसरे उपन्यासमें मिलेगी।

ख्वाजा हसन निज़ामी

जन्म स. १८७५ अी. ख्वाजा साहब दिल्ली के पासकी निज़ामुद्दीन अवलिया की गद्दीसे सम्बन्ध रखते हैं और आजकी अिस ढलती अुन्नमें भी बड़े जोश व ख़रोशके साथ अुर्दू ज़बानकी तरक्क़ी और प्रचारमें हिस्सा लेते हैं। अिनकी बीसों किताबें अ्याम व खासमें

मकबूल हैं जिनमें 'मुहर्रमनामा' 'बेवीकी तालीम' 'शौलादकी शादी' 'जग-बीती कहानियाँ' सिपाराअे दिल, बहुत मशहूर हैं। अिनकी 'कृष्णबीती' ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजोंमें बड़ी हलचल मचा दी थी। कुराने शरीफका हिन्दी तर्जुमा अिन्हींकी कोशिशोंका नतीजा है। गदरके बारेमें अिन्होंने जो दस किताबें लिखी हैं उनके बीसो अेडिशन आज भी निकलते जाते हैं।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़ 'सहल और दिलकश' होती है। अिनकी ख़ुसूसियत यह है कि बिलकुल मामूली से मामूली मज़मूनों और ख़यालोंको यह निहायत दिलकश और प्रभाव पूर्ण तरीकेसे अदा करते हैं।

×

×

×

शरर साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

सच्ची तरक्क़ीयाफ़ता क़ौम वह है जिसमें मज़क़ूरा सिफ़ात यानी बाहमी अुन्स व मुहब्बत और हमदर्दी व अित्फ़ाक़का जोश व जज़्बाअे अेतदालकी हदसे तजावज़ करके अुस दर्जेको पहुँच जाय जिसे अ़ैसारे नफ़्स कहते हैं। यानी क़ौम और वतनकी फ़लाहके सामने अपनी जानोमालका ख़याल न रहे। बल्कि लोग क़ौमी मफ़ादपर शरूख़ी फ़वायद व मुनाफ़ेका कुरबान करनेको तैयार हो जाया करें। दुनियामें किसी क़ौमने तरक्क़ी नहीं की है जबतक अुसमें हमदर्दी व अ़ैसारे नफ़्सका जोश नहीं पैदा हुआ है।

(अ़ैसारे नफ़्स)

किसी ज़बानमेंसे अगर अुपन्यासोंको निकाल दिया जाय तो वह अुतनी ही फ़ीकी और बे-मज़ा हो जायगी जितना कि बघैर नमकका सालन होता है। अिसलिये अुपन्यासोंका महत्त्व बहुत बड़ा है। लेकिन दूसरी भाषाओंके मुक़ाबलेमें अुर्दूके अुपन्यास कुछ पिछड़े हुआसे मालूम होते हैं। अिसका कारण अुसमेंसे पुरानेपनकी बू अभी नहीं निकल पायी है।

कहानियाँ

जिस तरह अंग्रेज़ी, हिन्दी, मराठी गुजराती, बंगला बघैरहमें छोटी छोटी कहानियोंकी बाढ़ आ गयी है अुस तरह अुर्दूमें नहीं आयी हैं।

अब भी अक्सर कहानियाँ लम्बी ही हुआ करती हैं। जिस तरहसे किसीने कोशरी खास कोशिश की हो तो हमें उसका पता नहीं है।

आजकलके कहानी लेखकोंमें यह नाम बहुत मशहूर हैं :—स्व. मुंशी प्रेमचंद, महाशय सुदर्शन, सरदार अहमद अली, कृष्णचन्द्र, अपेन्द्रनाथ 'अशक', कृष्णकुमार, रशीद जहाँ, अख्तर रायपुरी, मिर्जा अजीम बेग चगताशी वगैरह। अिनमेंसे बाज अब हिन्दीमें भी लिखने लगे हैं। अब्दुल लतीफ़, शौकत थानवी, फ़रिदतुल्ला बेग, अल्लामा पं. ब्रजमोहन दत्तात्रय कैफ़ी, डॉ. लक्ष्मीदत्त वगैरह नामभी बहुत मशहूर हैं।

मुंशी धनपतराय 'प्रेमचन्द'

स. १८८१-१९३७ श्री. प्रेमचन्दजी बनारसके रहने वाले थे। हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानोंके आसमानमें एक ही तेजके साथ चमकने वाला यह एक ही तारा था जिससे ज़्यादा रोशन तारा आज तक नहीं हुआ है। स. १९०१ से ही अन्होंने 'जमाना' में मज़मून लिखना शुरू किया। स. १९०४ श्री, में अिनका अपन्यास 'प्रेम' हिन्दीमें निकला। अिसके बाद धीरे धीरे 'जलवाये श्रीसार' 'बाज़ारे हुस्न', यह उर्दू और 'सेवा सदन' 'कर्म भूमि' 'काया कल्प' 'गोदान' वगैरह हिन्दी अपन्यास शायो हुये। (हिन्दी अपन्यासोंके उर्दू तर्जुमे भी हो चुके हैं) प्रेम पच्चीसी प्रेम बत्तीसी, ख्वाबो खयाल, 'फिदौसे खयाल' वगैरह अिनकी कहानियोंके संग्रह बहुत ही मक़बूल हो गये हैं। छोटे छोटे किस्से लिखनेमें प्रेमचन्दजी अपना सानी नहीं रखते थे।

आखिरी अुन्नमें प्रेमचन्दजीने हिन्दी ज़बानकी बहुत भारी खिदमत की। अिनकी हिन्दी ज़बान अितनी आसान, साफ़ और मीठी होती है कि थोड़ी सी तब्दीली करनेपर वह उर्दू कही जा सकती है। और अिसीलिये 'हिन्दुस्तानी' ज़बानके हमी प्रेमचन्दजीको गुरु मानते हैं। न अन्होंने संस्कृत लफ़्ज़ोंसे लदी हुआ पंडिताशू हिन्दीको अपनाया न अरबी फ़ारसीके शब्दोंसे लबरेज उर्दू अे मुअल्लाको ही। हिन्दुस्तानी देहातोंकी हू बहू तस्वीरें और वहाँके किसानोंके जीवनकी सच्ची और रोजमर्रा घटनाओंको निहायत अुम्दा तरीकेसे बयान कर-

नेके लिये भला वह 'हिन्दुस्तानी' को छोड़ और किस जवानकी मदद लेते ?
अनकी बेवकूफी मौतसे हिन्दुस्तानी अदबी संसारको जबर्दस्त सदमा पहुँचा है ।

महाशय सुदर्शनजी

मुन्शी प्रेमचन्दजीकी बाज ख़ासियतोंने महा-
शय सुदर्शनजीपर भी अपना रंग जमाया है ।

अिनके 'मुहब्बतका अिन्तक़ाम' नाटकपर पंजाब गवर्मेंटने पांच सौ रुपयोंका, 'वहारिस्तान' नामके कहानी-संग्रहपर साढ़े सात सौ रुपयोंका और 'सुदर्शन-सुमन' पर अेक हज़ार रुपयोंका अिस तरह अिनाम दिने हैं । 'बेगुनाह मुजरिम' 'चन्दन' 'तायरे खयाल' 'सोलह सिंगार' 'अन्धेकी दुनिया' 'सदाबहार फूल' 'क़ौसे कज़ह' 'चुटकियाँ' 'मनकी मौज' वगैरह क़अी अपन्यास, नाटक और क़िस्मोंके संग्रह अिन्होंने लिखे हैं । बाबू बेकिमचन्द्र चटर्जीके अक्सर नावेलों को अुर्दूमें लानेका काम अिन्हींने किया है । आज तक अिनकी सत्तर से ज़्यादा किताबें शायी हो चुकी हैं । आप पंजाबके बाशिन्दे हैं मगर आज़कल बंबअीमें रहकर 'हिन्दुस्तानी' की सेवा कर रहे हैं ।

नाटक और परिहास

तमहीदः—

अदबी दुनियामें नाटकोंका आगमन मूर्तिपूजाकी यादगारके तौरपर हुआ था। जिस कलामें यूनानियों और हिन्दुओंने जितनी तरङ्गकी की थी, उतनी और किसी भी कौमने नहीं की थी। कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानमें नाटकों का जोर गौतमबुद्धके जमानेके बाद हुआ जब कि हिन्दुओंको अपनी वृत्तपरस्तीको ज़िन्दा रखनेकी खास जरूरत महसूस हुयी। और इसीलिये यहाँके नाटकोंमें श्रीश्वर, धर्म, सदाचार वगैरह बातोंको अहमियत मिली।

लेकिन अर्दूका ड्रामा तो अक़ अ़ैसा ग़ैरमुल्की पौदा है जिसने अंग्रेज़ोंके यहाँ आ जानेके बाद ही जोर पकड़ा। यह सचमुच अक़ हैरतकी बात है कि सैकड़ों साल हिन्दुस्तानी आबोहवामें बढ़ते रहनेके बावजूद अर्दू ज़बानमें देसी ड्रामेकी कलम न लग सकी। हालाँकि अर्दू ज़बान खास हिन्दुस्तानकी हिन्दीकीही बुनियादपर खड़ी हुयी है; पर मुल्ककी बदकिस्मतीसे संस्कृत और हिन्दी अदीबोंने चाहे ग़फलतमें कहिये, चाहे भूठी शानके खयालमें कहिये, उसे लात मारकर दूर हटा दिया जिससे उस बेचारीको मज़बूरन् मुसलमानों ही की गोदमें पलना पड़ा। च्यूँकि हिन्दी और संस्कृतसे अर्दूदों मुसलमानों में कुछ नफ़रत-सी हो गयी थी जिसलिये न संस्कृतकी नज़्म और ड्रामेने अर्दू नज़्म और ड्रामेपर कोअी असर किया और न हिन्दी की ही। दूसरे, संस्कृत और हिंदी नाटकोंका सुवर्णयुग तब ख़त्म हो चुका था जब अर्दू ज़बान 'ड्रामा' की कलम लगवा लेने लायक बन गयी थी। फिर, च्यूँकि अइस्लामको माननेवाले लोगोंमें वृत्तपरस्ती, तस्वीरकशी रक़स (नृत्य),

और मौसीकी (संगीत) वगैरह बातोंको, जो कि नाटककी जान हैं, ममनूअ (वर्जित) समझा गया था, अिसलिये फ़ारसी ज़बानसे नाटक मिलना भी कुछ नामुमकिन सा था। हालाँकि मर्सिया भी अ़ेक किस्मका नाटक ही है। कुछ लोगोंकी राय है कि सबसे पहला नाटक फ़रखसियरके ज़मानेमें (फ़ारसीमें) तैयार हुआ जिसका अर्दू तर्ज़ुमा फ़ोर्ट विल्यम कॉलेजकी तरफ़से काज़िमअली 'ज़वान' ने किया।

जो हो, अ़िन्सानकी ज़िन्दगी में नाटक अपनी अ़ेक ख़ास हैसियत रखता है। वह हर ज़मानेमें किसी न किसी सूरतमें मौजूद होता ही है। हिंदुस्तानमें अ़ेक ज़मानेमें रामलीला और कृष्णलीला की बड़ी धूम थी जो बादमें तमाशों और नाटकोंमें तब्दील हो गयी। क्या अ़िन लीलाओंमें हिंदु-ओंके साथ साथ मुसलमान लोग भी भाग न लेते होंगे ?

अ़ुन्नीसवीं सदीके मध्यसे अर्दू ड्रामेका सुराग मिलता है। हालाँकि नाटक खुदाके कामोंकी नक़्क़ाली है, जो अ़िस्लामके लिहाज़से अनुचित है, मगर अ़ैश व आरामके गुलामोंके लिये मज़हबकी जंजीरें नहीं के बराबर होती हैं। उनका मज़हब ही अ़ैश व आराम हो जाता है। अ़िसलिये हम देख सकते हैं कि सबसे पहला नाटक वाज़िदअली शाहके रंगीले ज़मानेमें ख़ास शाही दरबारियोंके लिये खेला गया था। अ़िसका नाम था 'अ़िद्र-सभा', जिसे नासिख़के शागिर्द 'अ़मानत' ने स. १८५३ अ़ी. में नवाब वाज़िदअली शाहके हुक्मसे तसनीफ़ किया था। न्यूँकि लखनऊके अ़ितिहासमें यह शौक व अ़िशरतका बेहतरीन दौर था, नाचरंगके अ़लावा नवाबों और दरबारियोंके पास दूसरा कामही न था अ़िसलिये यह नाटक बहुत ही मज़बूत हो गया। अ़िसके कितने ही तर्ज़ुमे और अ़ेडिशन निकल चुके हैं। अ़िस नाटकमें खुद वाज़िदअली शाह अ़िन्द्र बनते थे और महलकी दासियाँ परियाँ बनती थीं। नाटक हिन्दू पुराणोंमेंसे लिया गया था, खेलने वाले मुसलमान थे और स्टेज था युरोपियन। अ़िस तरह वह अ़ेक अ़जीब खिचड़ी थी। कहते हैं कि अ़िसी 'अ़िन्द्र सभा' की खिखी अ़ुबानेके लिये बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'बन्दर सभा' लिखी थी।

असके बादका अर्द्ध नाटकका हाल अक ही वाक्यमें कहना हो तो हम यूँ कह सकते हैं कि हिन्दू-मुसलमान लेखकोंने संस्कृत, हिन्दी, बँगला, मराठी या अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, फ़्रान्सीसी वगैरह जबानोंसे नाटकोंके तर्जुमें करके पारसी लोगोंकी थियेट्रिकल कंपनियोंको दिये जिन्होंने अक ब्यौपारके तौर पर गाँव गाँव और शहर शहर घूमकर वह लोगोंको दिखलाये ।

अस ज़मानेकी यह ख़ासियत है कि अस वक्त नाटकके अभिनेता और अभिनेत्रियाँ नख़में न बोलकर शेरोंमें बातचीत करते थे और ग़ज़लें गाते थे । जबान बिलकुल मामूली और घटनाओं अतिशयोक्तिपूर्ण होती थीं । नाटकमें काम करनेवाले मर्द अदना दर्जेके आवारा और औरतें अक्सर बाजारी होती थीं । नाटकोंमें चूमाचाटी, भद्दी और अश्लील बातचीत, मारकाट, फाँसी वगैरह चीज़ें लाज़िमी थीं । असलिये आम लोगोंका दिलबहलाव तो वह जरूर करते थे मगर अँचे और ख़ान्दानी कानों और आँखोंको वह बिलकुल बेहूदा और नागवार मालूम होते थे ।

लेकिन जैसे जैसे अंग्रेज़ी तालीम फैलती गयी वैसे वैसे यह चीज़ें कम होती गयीं और अर्द्ध नाटकने भी साहित्यिक रूप धारण करना शुरू किया । अब धीरे धीरे अच्छे अच्छे नाटक स्टेजपर आने ही लगे थे कि सिनेमाका जबर्दस्त डंडा अुनके सिरपर बैठ गया और अुन्हें स्टेजपरसे भागकर सिर्फ़ किताबों के अन्दर ही अपनेको दफनाना पड़ा । दूसरी हिन्दुस्तानी ज़बानोंके नाटकोंकी तरह अर्द्ध नाटक पर भी सिनेमाने काफ़ी असर किया है । आज-कलके नाटकोंकी तरफ़ स्टेजपर खेले जाने वाले नाटकोंकी दृष्टिसे देखना बेकार है । फिर भी अगर अर्द्ध वाले मराठी भाषा-भाषी लोगोंकी तरह कोशिश करें तो वह भी अपने नाटकोंको जिन्दा रख सकेंगे ।

यहाँ हम अुन थियेट्रिकल कंपनियोंका मुख़्तसर ज़िक्र करते हैं जो अक ज़मानेमें बहुत मशहूर व मक़बूल थीं ।

[१] ओरिजिनल

थियेट्रिकल कंपनी:— अिसके मालिक सेठ पेस्तनजी फ़रामजी खुद
अेक बहुत अुम्दा अैक्टर थे । 'रौनक' बनारसी
अौर 'जरीफ़' ने अिस कंम्पनीके लिअे नाटक तैयार करके दिये थे जिनमें
'रौनक' के 'अिनसाफ़े महमूदशाह' का नाम अब भी मिलता है । अिन लोगोंने
अैसी ज़बान लिखनेकी कोशिश की जो आम लोगोंकी समझमें आसानीसे
आजाय क्योंकि अिन्हें ज़्यादातर काम जनतासे ही पड़ता था । अिसलिये
अिनकी ज़बान 'हिन्दुस्तानी' कही जाने लायक थी ।

[२] विक्टोरिया

नाटक कंपनी. अिसके मालिक खुशेदजी बालीवाला खुद बड़े हँसोइ
अभिनेता थे । अिस कम्पनीके नाटक लिखने वाले
मुंशी विनायकप्रसाद 'तालिब' बनारसी थे जिन्होंने 'हरिश्चन्द्र' 'गोपीचन्द'
'लैलो निहा' 'दिलेर शेर' वगैरह नाटक लिखकर नाट्यकलाकी तरक्कीमें काफ़ी
मदद पहुँचायी ।

[३] अल्फ़ड

थियेट्रिकल कंपनी अिसके मालिक कावसजी खटाव अेक अच्छे टैजिक
अैक्टर थे । कम्पनीके ड्रामा-निगार मेहदीहसन 'आह-
सन' लखनवीने अपनी साफ़ अौर मुहाबिरेदार ज़बानमें 'चन्द्रावली' 'दिल-
फ़रोश' 'चलतां पुर्जा' वगैरह नाटक लिखे जो काफ़ी मशहूर हो गये थे ।
अिनके बाद कंपनीकी खिदमत पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' देहलवीके सिपुर्द
हो गयी । बेताबजी 'शेक्सपियर' नाम अेक रिसाला भी निकालते थे । 'क़तले-
नज़ीर' 'महाभारत' 'रामायण' 'पत्नी प्रताप' 'कृष्ण सुदामा' 'दावपेंच' 'जह-
रीला सौंप' वगैरह बहुतसे नाटक लिखकर अुर्दूकी नाट्यकलामें काफ़ी विस्तार
अौर तर्क्की की ।

अिन कंपनियोंके अलावा अौर भी बहुत-सी कंपनियाँ निकलीं अौर बंद
हुअीं जिनमेंसे चंदके नाम नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) न्यू अल्फ्रेड कंपनी जिसके अन्तर्दायी नाटक लिखने वाले आगाहश् काश्मीरी थे। अन्होंने बादमें अपनी निजी 'शेक्स-पियर थियेट्रिकल कंपनी' खोली थी जो चंद ही रोजमें बंद हो गयी। अिनकी मशहूर तसनीफोंमें 'सफ़ेद खून' 'शहीदे नाज' 'असीर हिर्स' 'तुर्की दूर' 'खूब-सूरत बला' 'सूरदास' 'गंगावतरण' 'आखका नशा' 'दिलकी प्यास' 'बनदेवी' 'नेक परवीन' वगैरह हैं। आगाहश् साहबका अिश्क बहुत गहरा और भाव सखोल होते हैं। लेकिन अेक ही नाटकमें दो प्लॉट कायम करनेका जो दोष अुस जमानेमें चलता था, वह अिनमें भी मौजूद है।

(२) ओल्ड पारसी थियेट्रिकल कंपनी।

(३) भारत व्याकुल कंपनी, मेरठ:—अिसमें बुद्ध भगवानका तमाशा खूब होता था।

(४) लाअिट ऑफ़ अिडिया थियेट्रिकल कंपनी, वगैरह।

पुराने नाटककारोंमें गुलाम हुसैन 'जरीफ़' मुहम्मद अब्दुल वहीद 'कैस' 'फ़ीरोज़शाह 'रवाँ' विश्वंभर सहाय 'व्याकुल' वगैरह मशहूर हैं।

बीसवी सदीके नाटक

बीसवी सदीके शुरू शुरूमें ड्रामाफ़े अच्छे दिन आते नज़र आने लगे। अंग्रेजी तालीमने नये ढंगके स्टेजका खयाल लोगोंके दिलोंमें पैदा किया। मगर अिसी अर्सेमें सिनेमा आ मौजूद हुआ और स्टेजका ड्रामा मरने लगा। अब जो नाटक लिखे जाते हैं वह खास कर अेक अदबकी शाख़ समझ कर लिखे जाते हैं न कि खेलनेके खयालसे। अिस नये ढंगके ड्रामा-नवीसोंमें नीचेके नाम मशहूर हैं—मुंशी द्वारकाप्रसाद 'अुफ़क़' अहमद शुजाअ 'बीअे' महाशय सुदर्शन, सैयद दिलावर शाह, मुंशी अिम्तियाज अली 'ताज़' डॉ. सैयद आबिद हुसैन, प्रोफ़ेसर अिश्तयाक़ हुसैन 'कुरैशी' वगैरह।

अदबी ड्रामांमें 'कासिम व जहरा' 'तस्खीरे फ़ान्स' 'माशूकाअे फ़िरंग' 'बेदारी' 'परदाअे ग़फ़लत' 'मुहब्बतका अिन्तक़ाम' 'जान जराफ़त' 'बिगड़ेदिल' वगैरह नाम जिक़ करनेके क़ाबिल हैं।

सामाजिक नाटकोंमें मौ० अब्दुल माजद साहबका 'जदोपशे माँ' पं. ब्रज

मोहन दत्तात्रय कौलीके 'राजदुलारी' और 'मुरारी दादा', महाशय सुदर्शनजी का 'अंधेकी दुनियाँ' कुरैशी साहबका 'नफ़रतका बीज' वगैरह मशहूर हैं।

सियासी नाटकोंमें कोअ्री आला दर्जेके नाटक नहीं हैं। फिर भी मुंशी अमराव अलीका 'अल्बर्ट बिल' और मुंशी किशनचंद 'जिया' का 'जख्खी पंजाब' काफ़ी अच्छे हैं।

आजकल अर्दू-झामा अक़ अदबी किस्मकी हैसियतसे काफ़ी तेज़ रफ़्तारी के साथ तरक्की कर रहा है। और अउसमें सभी तरहके मज़मून आने लगे हैं।

व्यंग्य और परिहास

(जराफ़त) अर्दू कवितामें व्यंग्य और परिहासकी मिसालें सौदासे मिलती हैं। मसहकी और अशिशाने भी अशिस सन्फ़में तबियत आजमाअ्री की है। अक़बर तो जराफ़तके बादशाह थे। नसूमें अशिस किस्मके मज़मूनका प्रारंभ 'अवधपंच' से हुआ। सज्जाद हुसैन, मिर्जा मच्छूबेग, रतननाथ सरशार वगैरह अशिस जमानेके बेहतरीन जराफ़ते-निगारोंमें हैं। बम्बूक मौलवी महफूज़अली भी अशिसी जमानेकी यादगार हैं। मौजूदा जमानेमें 'पितरस', 'रशीद सदीकी' और मिर्जा फ़रहतुल्ला बेग बहुत मशहूर व्यंग्य-लेखक हैं। सुल्तान हैदर 'जोश' ने भी अशिस विभागमें काफ़ी नाम कमाया है।

ख्वाजा हसन निजामीका पाया अर्दू जराफ़तमें बहुत बलंद है। अशिनका अपना अक़ खास रंग है जो अशिनकी रचनाओंमें जगह जगह पाया जाता है। मलार मौज़ी की 'गुलाबी अर्दू' और 'नन्हेंकी माँ' किसी जमानेमें बहुत मकबूल थे। मिर्जा अज़ीमबेग चगताअ्री (जिनकी मृत्यु अभी पिछले साल हुई है।) और शौकत थानवी जराफ़त-निगारकी हैसियतसे आजकल बहुत मशहूर हैं। अेम.असलम साहबका 'मिर्जाजी' और अशिम्तियाजअली ताज का 'चचा छकन' भी परिहासके अच्छे नमूने हैं। चगताअ्री साहबकी 'शरीर बेवी' 'कोलतार' 'मलफूज़ात टामी' शौकत थानवी साहबकी 'दुनियाअे तबस्सुम' तूफ़ाने तबस्सुम, 'सैलाबे तबस्सुम', 'दिलक़ें' 'ख़ानमख़ाँ' 'सौतिया-चाह' वगैरह तसनीफ़ें; मौलाना राशिक अलखैरीकी 'नानी अशो' 'विलायती नन्हीं' वगैरह किताबें परिहासके विषयमें बहुत मशहूर हैं।

अखबारी दुनिया

स. १८३६ अ. में हिन्दुस्तानमें प्रेसको आजादी मिली और देसी जवानोंमें अखबार व किताबें कसरतसे निकलने लगीं। स. १८३८ अ. में मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आजाद' के वालिद मौ० बाक्र हुसैनने 'अर्दू' अखबार दिल्लीसे जारी किया जिसे अखबारके बजाय अक अदवी रिसाला कहना मुनासिब होगा क्योंकि उसमें अदबकाही चर्चा खास तौरपर हुआ करता था। कुछ रोज चलकर यह बंद हो गया।

स. १८५० अ. से मुंशी हरसुखरायने लाहौरसे 'कोहेनूर' अखबार निकाला जो हफ्तावाराना था। इसकी कद्र महाराजा कश्मीर और महाराजा पटियाला भी करते थे जिससे वह बहुत दिनोंतक अच्छी तरह चला। लेकिन इसकी कोअ्री अपनी पॉलिसी नहीं थी। जो शास्स अेडीटर बन जाता वह अपने ढंगसे उसे चलाता। मुंशी नवलकिशोर इसीमें काम करते थे जिन्होंने बादमें जा कर 'अवध अखबार' और 'नवलकिशोर प्रेस' चलाया।

अनके बाद कानपुर, लाहौर, दिल्ली, बंबअ्री, मद्रास, वगैरह बड़े बड़े हिन्दुस्तानी शहरोंसे अर्दू के अखबार निकले जिनमें 'शोलाअे तूर' 'मतलाअे तूर' 'पंजाबी अखबार' 'विक्टोरिया पेपर' 'अवध अखबार', 'अवधपंच' 'अखबारे आम' 'हिन्दुस्तानी' 'पैसा अखबार' वगैरह नाम बहुत मशहूर हैं। अिनमेंसे बाज अदवी अखबार थे और बाज मामूली खबरें देते थे।

'अखबारे आम' पंडित मुकुन्दरामने लाहौरसे निकाला था। इसकी कीमत बहुत कम और खबरें भी मामूली मगर दिलचस्प होती थीं। इसलिये यह जनतामें बहुत मकबूल हो गया। अफगान और रूस-रूमकी

लड़ाखियोंके जमाने में अिसकी खपत बहुत बढ़ गयी और यह रोजाना हो गया । बादमें जब अिसके संपादक गोपीनाथ पंडित हो गये तब अिसमें अदबी मजमून भी आने लगे और वह स्कूलोंमें लिया गया ।

‘अवध अखबार’ के मालिक मुंशी नवलकिशोर थे और ऐडिटर ‘सर-शार’ । ‘सरशार’ के दिलकश और हास्यपूर्ण कलामें अिसे निहायत मक-बूल बना दिया था ।

‘अवधपंच’ के मशहूर संपादक मुन्शी सज्जाद हुसैन काकोरवी (स. १८५६-१९१५. आ.) पहले शम्स हैं जिन्होंने हिन्दुस्तानमें जरीफाना रंगका सबसे पहला अ्यूर्दू अखबार निकाला (स. १८७७ आ.) अिसने मुल्क और जवान दोनोंकी काफ़ी सेवा की । मुन्शी साहब निहायत नेक-दिल, साफ़ हृदयके और धार्मिक-पक्षपातसे रहित शम्स थे । अिनकी अिबारतमें बे-साख्तगी (अकृत्रिमता) और सफ़ाअी बेहद पायी जाती है । मजहबी रंगका मजमून लिखकर अिन्होंने अपनी कलमको कभी खराब न किया ।

‘अवधपंच’ ने नसकी अेक खास शान पैदा कर दी । मजाक और जरा-फ़तको नसमें दाखिल किया, जवानमें ठीक ठीक मानीके शब्द शामिल करके उसकी कीमत बढ़ा दी । किताबोंकी आलोचना पुरजोर तरीकोंसे करनी शुरू की । अिसके लेखक काविल और फ़ाजिल लोग थे जो सोशल रिफ़ॉर्म-के सख्त मुखालिफ़ होनेकी वजहसे सर सैयद और अुनके स्कूलके कट्टर दुश्मन थे । अिनमेंसे ‘आशिक’, ‘हिज़्’ ‘वर्क’ अकबर अिलाहाबादी, सैय्यद मुहम्मद ‘आजाद’ वगैरह मशहूर और जबरदस्त मुसन्निक थे । ‘अवधपंच’ हिन्दुस्तानी रअीसोंका उपदेशक, काँग्रेसके असूलोंका हामी, हिन्दूमुस्लिम अेक-ताका प्रयत्न करनेवाला मगर अिन्कमैटैक्स बिल और सर सैयद के प्रस्तावों का पूरा विरोधक था । अिसके ऐडिटर मुन्शी सज्जाद हुसैन अेक जबरदस्त उपन्यासकार थे । ‘प्यारी दुनिया’ ‘मीठी छुरी’ ‘काया पलट’ ‘हयाते शेख-चिल्ली’ वगैरह अिनके नाविल बहुत आला दर्जेके हैं ।

आजकलके अखबारोंमें दिल्लीके ‘तेज’, ‘वहदत’ लाहौरके ‘जमीदार’ और ‘अिन्किलाब’ बंबअीके ‘खिलाफ़त’ और ‘अजमल’ कलकत्ताके ‘हिंद’

वगैरह रोजाना और 'मदीना' (बिजनौर) 'हिन्दुस्तान' 'अन्मारी' (दिल्ली) 'मनादी' 'रियासत' 'हमारी जबान' वगैरह हफ़तावाराना और पंद्रह-रोजा अख्-बार मशहूर हैं ।

अखबारोंके साथ साथ रिसाले (मासिकपत्र) भी निकलने लगे, जिनमें खास तौरपर अदबी चीजें ही आया करती थीं । लेकिन सबसे पहला रिसाला 'तहज़ीब अ़ुल अ़िख़लाक़' (सर सैयदका) अदबी नहीं बल्कि सोशल था । यह सात साल तक लगातार चला था । अिसके बाद क़अी रिसाले निकले और बंद भी हो गये, जिनमेंसे बाज़ बहुत मशहूर हैं । 'पंजाब रिव्यू' (१८६८) 'ग़ुलदस्ता अ़े नतीजाअ़े सख़ुन' 'पयामे यार' 'पयामे आशिक' वगैरह । अिनमें अक्सर ग़ज़लें ही छपती थीं । 'मोहमेडन ऑब्ज़र्वर' के अ़ेडीटर अब्दुल क़ादिर साहबने 'मख़ज़न' निकाला जो बहुत मज़बूत हुआ । स. १९१० अ़ी. में अ़िंडियन प्रेससे 'अदीब' निकला । अिस रिसालेकी याद लोगोंके दिलोंमें आज भी जिन्दा है । शररमरहूमका 'दिलग़ुदाज़' निगम साहबका 'ज़माना' लखनऊका 'निगार' लाहौरका 'हुमायूँ' आजमगढ़का 'मारुफ़' दिल्लीके 'साक़ी' और 'कामयाब' औरंगाबादका 'अुर्दू' 'नैरंगख़याल' और 'सायन्स' बहुत मशहूर है । अिनके अ़लावा 'अ़ालमगीर' 'अदबी दुनिया' 'ज़ामिया' 'सितारा' 'फ़िल्मिस्तान' 'रहनुमाअ़े हिन्द' वगैरह और क़अी रिसाले आजकल चलते हैं । अिन सबके जरिये अ़ुर्दूकी जो सेवा हो रही है अ़सका बयान करना मुश्किल है ।

परिशिष्ट १

आजके शायर

[सन् १९४२ श्री. में 'अर्दूके अदीब' में 'कलके शायर' ही आ सके थे ।
अुसके बाद कअ्री कारणोंसे, जो सबको मालूम ही हैं, मैं 'आजके शायर'
नामका अध्याय न लिख सका । जेलमें वक्त तो काफी मिला था, मगर जरूरी
किताबें न मिलनेसे यह काम वैसा ही पड़ा रहा । आज भी मेरे पास पर्याप्त
सामग्री नहीं है, फिर भी जो मवाद मैं अिकट्ठाकर सका हूँ अुससे कुछ न कुछ
खयाल जरूर आ सकेगा । यही बात 'आजके गद्य लेखक' नामक अध्यायके
बारेमें भी है । मैं मानता हूँ कि मेरी जानकारी अद्यतन नहीं है, फिर भी अिन
अध्यायोंको बिलकुल छोड़ देनेकी बनिस्बत जो कुछ लिखा जा सके, लिखनेकी
कोशिश की है । अगर पाठक मेरी त्रुटियों और खामियोंकी तरफ मेरा ध्यान
आकर्षित करनेकी मेहरबानी करेंगे तो मैं अुनका शुक्रगुजार हूँगा ।]

— लेखक

अस दौरकी खससियतें

अस दौरकी शायरीपर सरसरी निगाह डालनेसे ही यह बात मालूम हो जायेगी कि आजकी शायरीका दायरा बहुत वसीअ हो गया है । अब गजलों-का दौर-दौरा कुछ कम हुआ है और नज़्में बहुत ज़्यादा लिखी जाने लगी हैं । अिन नज़्मोंके आकार-प्रकारमें भी बहुत वृद्धि हुई है । यानी नज़्में हर विषयपर और लम्बी लम्बी लिखी जाने लगी हैं । अससे पहले सिर्फ़ मर्सिये ही मुसलसिल (सिलसिलेवार) और मुस्तक़िल (ठोस, स्थायी) होते थे, मगर अब हर किस्मकी नज़्में खंड-काव्योंका रूप धारण करने लगी हैं । यह सब अंग्रेज़ीकी कविताके अध्ययनका असर समझना चाहिये । क्योंकि पश्चिमी साय्रिन्स, फ़िल्सफ़ा, ऊन वगैरहसे ज़्यादा परिचय हो जानेसे आम-तौरपर पढ़े-लिखे लोगोंकी दिलचस्पी पुरानी मुबालाआमेज़ और बनावटी शायरीसे हटकर असलियत और वाक़यानिगारी (वास्तविक चित्रण) की तरफ़ ज़्यादा हो गयी । और उसका असर अर्द्ध शायरीपर भी पड़ा । आज भी पुराने ढंगकी अशक़ व मुहब्बतकी गजलें लिखनेवाले कुछ कम न मिलेंगे, लेकिन अब जो प्रगतिशील लेखकवर्ग और पाठकवर्ग तैयार हो रहा हैं अुसे अुसमें बहुत कम दिलचस्पी है । नज़्मोंका दौर भी अब कुछ कम होता हुआ दिखायी दे रहा है, अुनकी जगह अब गीत आने लगे हैं । यह तब्दीली शाबद सिनेमा-टोंकीके कारण हो रही है । अससे अ़िक फ़ायदा तो यह हुआ है कि ज़बान बड़ी आसान और आमफ़हम हो रही है, क्योंकि गीत तो अवामको मदेनजर रखकर लिखे जाते हैं; असलिये अुनमें अरबी-फ़ारसीके बोझल अल्फ़ाज़ और ग़ैरफ़ितरी—(अप्राकृतिक) व ग़ैरहिन्दुस्तानी चीज़ें बहुत कम आने पाती हैं । आज जो गजलें लिखी जाती हैं अुनमें भी अिन बातोंका बहुत खयाल रखा जाता है ।

फ़िर दूसरी ज़बानोंसे नज़्मोंके मन्ज़ूम (पद्यमय) तर्ज़ुमे भी होने लगे हैं जिससे अुर्दूका खज़ाना काफ़ी भरा जा रहा है । अिन नज़्मोंके मतालेसे लोगोंको अस बातका पता लगता है कि दुनियाकी दूसरी ज़बानोंमें किस तरहकी शायरी रिवाज़में आने लगी है । और अुससे लिखने और पढ़नेवालोंके अ़िमानमें काफ़ी हलचल मच जाती है ।

असलिये अब पुराने ढंगकी रस्मी बातें, बासी और बेहूदा विषय बहुत कम हो गये हैं ।

अब हम कुछ और शायरोंके हालात लिखते हैं । अिनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जिनका शुमार 'कलके शायरों' में होता है, मगर उनका जिक्र पहले नहीं आया है असलिये उनको अिस दौरके शायरोंके साथ ले लिया है:—

हसरत मोहानी

जनाब हसरत मोहानी साहबका नाम तमाम हिन्दुस्तानमें जो फैला है उसकी असली वजह उनकी अदबी खिदमत नहीं, बल्कि सियासी करीयर है । खिलाफतके जमानेमें आप कट्टर राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे, मगर बादमें धीरे धीरे आपमें फिरकावागना जोश आने लगा । आजकल आप यू. पी. के पहले तबकके मुस्लिम लीगियोंमेंसे हैं ।

हिन्दुस्तानमें बहुत कम लोग जानते होंगे कि मोहानी साहब अेक अँचे दर्जेके शायर भी हैं । मौलाना अवुल फ़लाम आज़ादकी तरह मोहानी साहब का भी असली नाम बहुत कम लोगोंको मालूम है । उनका असली नाम सैयद फ़जलुल हसन है और 'हसरत' तख़ल्लुस है । क़स्बा मोहानके रहनेवाले हैं, असलिये हसरत मोहानी बन गये । अपने नामकी अिस गड़बड़ीके बारेमें खुद अेक जगह फ़रमाते हैं :—

जब से कहा अिश्कने हसरत मुझे ।

कोअी भी कहता नहीं फ़जलुल हसन ॥

हसरत साहबका जन्म स. १८७५ अी. में यू. पी. के अुन्नाव जिलेके मोहान कस्बेमें हुआ था । अिब्तदाअी तालीम आपकी घरपर ही हुई । उसके बाद आप अलीगढ़ युनिवर्सिटीमें दाखिल हुअे और वहींसे बी. अे. पास किया । पहले पहल तो अिलमी व अदबी खिदमातकी तरफ़ रुजहूब (झुकाव) रहा, मगर जबसे राजकाजी मामलोंमें दिलचस्पी लेने लगे तबसे कोअी ख़ास साहित्य-सेवा न कर सके । फिर भी यज़लगेअीमें आपका भरतबा निहायत बलन्द और अिम्तियाज़ी (वैशिष्ट्यपूर्ण) है । अिसमें अक नहीं कि

जुर्दूकी मौजूदा गजलको निखारने और सुधारनेमें आपने बड़ा काम किया । नीरसताको दूर करके काव्यरसको प्राधान्य देना आपका असली वैशिष्ट्य है ।

मोहानी साहब लखनऊके मशहूर शायर 'नसीम' के शागिर्द हैं । आपको पुराने अस्तादोंके कलामसे फ़ितरी दिलचस्पी है, अिसलिये पुराने रंगका असर आपकी शायरीमें बहुत ज़्यादा पाया जाता है । साक़ी व पैमाना, शमा व परवाना, गुल व बुलबुलकी कविताओं अब भी लिखते हैं । पुराने लोगोंकी तरह लम्बी लम्बी गजलें भी लिखते हैं और पुराने मतरूक (त्यक्त) अल-फ़ाज भी अिस्तेमाल कर जाते हैं; जैसे: न दीजियो, आन पहुँचे, बारे—वगैरह । मगर कलाम बिल्कुल सुलझा हुआ और बेकार बातोंसे ख़ाली है । सफ़ाअी और शीरीनी हर जगह मौजूद है ।

कवितामें दर्द व असरके साथ साथ ख़यालकी पाकीजगीका लिहाज़ भी आप बहुत रखते हैं । सारी कविता न सिर्फ़ यास व नामुरादीका मुरक़ा (संग्रह) है न अ़ैश व निशातकी महफ़िल, अिसलिये पढ़ते वक्त जी नहीं अुकता जाता । ज़बान आम तौरपर आसान और बोलचालकी रखते हैं, मगर कभी कभी ग़ालिबकी तरह फ़ारसीकी मोटी मोटी तरकीबें अिस्तेमाल कर जाते हैं जिससे प्रसाद-गुणमें कमी हो जाती है ।

मोहानी साहबकी शायरीका दायरा हुस्न व अिद्रककी वारदातों तक महदूद नहीं है । आप मजहबी, समाजी, राजकाजी वगैरह सभी विषयोंपर तबअ —आज़माअी करते हैं ।

‘जोश’ मलीहाबादी:

जोश साहबका जन्म सन् १८९४ अी. में मलीहाबादमें हुआ था । आप को बचपनसे ही शायरीका चस्का रहा है । कुछ अ़ों तक दारुतर्जुमा जामिअा अुस्मानियामें सी आप अदबी ख़िदमात अंजाम दे चुके हैं । आपने दिल्लीसे ‘कलीम’ नामका अदबी रिसाला शायर करना शुरू किया था । यह बहुत अ़ूँचे दर्जेका रिसाला समझा जाता था, फिर भी वह ज़्यादा दिन न चल सका और बादमें ‘नया अदब’ में शामिल कर देना पड़ा । ‘नया अदब’ तरक़्की पसन्द (‘प्रगतिशील’) लेखकोंका नुमायन्दा है जो हर माह लखनऊसे निकलता है ।

जोश अब्बल दर्जेके गद्यलेखक (नखनिगार) भी हैं। सिर्फ़ अदबी मजमूनोंपर ही नहीं, बल्कि समाजी, राजकाजी और अिक्तसादी (आर्थिक) विषयोंपर भी आप लिखते रहते हैं। आपकी नखनिगारीके अिम्तियाजी (वैशिष्ट्य-पूर्ण) पहलू हैं जोर, जोश, साफ़गोअ़ी और किसी क़द शेरियत। फ़िलहाल आप अपने वतन मलीहाबाद (यू. पी.) में रहकर अ़ेक़ जबर्दस्त नज़्म -- 'हफ़े आख़िर' -- जिसका विषय अिन्सानियतकी शायराना तारीख़ है -- लिख रहे हैं।

अिन्की कविता दो भागोंमें बाँटी जा सकती है :-(१) राजल और (२) नज़्म। दिलकशी आपके कलामका खास जौहर है। जोश और जोरका दरया हर जगह लहरें मारता दिखाअ़ी देता है। दूसरे प्रगतिशील लेखकोंकी तरह आप अपने कलामसे दुनियाको ख़्वाबे ग़फ़लतसे जगानेकी कोशिश करते हैं और अिक्कबालकी तरह लोगोंको कार्य करनेकी ओर प्रवृत्त करते हैं; दुनियाको गुलमीसे नजात दिलाकर अपने पैरोंपर खड़े होनेकी तालीम देते हैं। मजदूर पेशाकी हिमायत और सरमायादारीकीं मुखालिफ़त आपका खास रंग है। पुरानी रूढ़ियों और समाजकी ख़राबियोंपर आप बहुत जोरदार हमले चढ़ाते हैं। लेकिन आपकी कवितामें रूखापन बहुत कम पाया जाता है। अिश्क़ व मुहब्बत का रंग भी बहुत गहरा पाया जाता है। आजके शायरोंमें आप बहुत अूँचे दर्जेके शायर समझे जाते हैं।

‘सफ़ी’ लखनवी:

अलीनक़ी नाम और ‘सफ़ी’ तख़ल्लुस है। आपका जन्म सन् १८६२ अ़ी. में लखनअूँमें हुआ था। मौलाना सफ़ीकी नज़्में ज़्यादातर शीया कान्फ-रन्सके सालाना ज़ल्सेके सिससिलेमें लिखी गयी हैं और सच तोयह है कि शीया क़ौमको जितना फ़ायदा मौलाना सफ़ीकी नज़्मोंसे अ़मलकी तरफ़ क़दम अ़ुठा-नेमें पहुँचा है अ़ुतना शायद बहुतसे लीडरोंकी पुरजोश तक़रीरों और अ़मलसे भी न पहुँच सकता। आपकी शायरीमें दिलकशी बहुत ज़्यादा है, कड़वाहट बिल्कुल नहीं। अिस तरहकी नज़्मोंका मजमूअ़ा ‘लख़्ते जिग़ार’ के नामसे शायी हो चुका है। आपने अपने कलाममें हिन्दू-मुस्लिम अिन्तेहादपर काफ़ी

जोर दिया है। आपकी जबान गंगाजमनी ढंगकी है। उसमें आपको अरबी, फ़ारसी, हिन्दी सभी जबानोंके लफ़्ज़ मिलेंगे। अिलाहाबादकी हिन्दुस्तानी अकेडमीने आपकी मसनवी 'तन्ज़ीमुल हयात' पर पाँच सौ रुपयोंका अिनाम दिया है।

“फिराक़’ गोरखपुरी

आपका जन्म सन् १८६६ श्री. में हुआ था।

वी. अ. का अिम्तहान पास हो जानेके बाद सरकारने फिराक़को डिप्टी कलकटरीके लिये मुन्तख़ब कर दिया और आशि. सी. अिस. के लिये भी नाम-जद कर दिया था, मगर डिप्टी कलक़टर बननेके पहले ही आप कांग्रेसमें शरीक हो गये और दूसरोंको जेलखानेमें भेजनेके बजाय खुद जेल गये।

हालाँकि आपके पिता गोरखप्रसाद ‘अिबरत’ अच्छे शायर थे; फिर भी उन्होंने फिराक़के बचपनमें उनके शायरीके शौक़को अभरने नहीं दिया। मगर उनके फ़ूफ़ीजादभाअी राजकिशोरलाल ‘महर’ की सोहबतोंसे उनको बहुत फायदा पहुँचा। पहले हजरत ‘नासरी’ से और बादमें ‘नसीम ख़ैराबादी’ से अिसलाह लेते रहे।

फिराक़ जिस जेलमें थे वह शेर व शायरीका मदरसा हो गया था। जनाब ‘मदाह’ ‘आरिफ़’, मौलाना मुहम्मद अली, ‘हसरत मोहानी’, मौलाना अबुलकलाम ‘आज़ाद’ वगैरहकी आये दिनकी सोहबतोंने बड़मे सखुनकी गर्म बाजारीमें और ज़्यादाह मदद की। जेलसे छूटनेके बाद फिराक़ किश्चयन कालेज और सनातनधर्म कालेजमें अुर्दू पढ़ानेका काम करते रहे। उसके बाद अिलाहाबाद युनिवर्सिटीमें अंग्रेजीके लेक्चरर बने। आजकल आप अिलाहाबादमें ही रहते हैं। फिराक़की कवितामें भावाविष्करण (जज़्बात-निगारी) पर बहुत जोर दिया जाता है। आपने गजलोंके अिलावा नज़्में भी बहुत लिखी हैं। आपकी लिखी हुअी समालोचनाअें भी बड़ी अिज़्ज़त के साथ पढ़ी जाती हैं।

‘हफीज जालंधरी

अपने गीतोंकी वजहसे हफीज जालंधरी बहुत मशहूर हो गये हैं । बेखुदी, सरशारी और रवानी अिनके कलामके मखसूस जौहर हैं । गजलोंमें दर्द व गुदाज बहुत काफी है । अिनके गीत मी बड़े मुतास्सिर हैं । नरम व शीरी अलफाजका अिस्तेमाल बड़ी खूबीसे करते हैं । शाहनामाअे अिस्लाम ‘नरमाजार’ और ‘सोजसांज’ अिनकी महत्वकी रचनाअें हैं । नये छन्द, मादक संगीत और स्थानीय रंग अिन चीजोंकी वजहसे हफीज खालिस हिन्दुस्तानी कवि बन गये हैं ।

अेहसान दानिश

आपने अिफलास (गरीबी) की आगोशमें आँख खोली और अुसीके सायेमें पलकर जवान हुअे । हिम्मत व अिस्तक़लाल (दृढ़ता) ने रहबरी (मार्ग दर्शन) की और आपने मजदूरी, मेमारी, बागबानी और पहरेदारीकी सख्त मन्जिलोंसे गुजरकर भी शायरीकी दुनियामें अेक मुमताज हैसियत हासिल कर ली । मजदूरों और मुक़्तलिसोंकी जिन्दगीका आपको जाती तजुर्बा था अिसलिये आप मजदूरों और गरीबोंकी हूबहू तस्वीरें खींचनेमें अितने कामयाब हुअे हैं कि पढ़ने वाला रो अुठे । आपने कोअी बाक्तायदा तालीम नहीं पायी है अिसलिये आप अिन्कलाबकी जो तस्वीरें खींचते हैं वे साफ़ और सुलभी हुअी नहीं होतीं । वास्तविकताकी अपेक्षा कभी कभी भाअोंके प्रभावमें बहुत ज़्यादा बह जाते हैं । ‘बागीका ख़्बाब’ या ‘साधूकी चिता’ जैसी भयानक नज़्मे आपके तल्ख़ तजुर्बोंके कारण ही पैदा हो सकीं । आपने रुमानी नज़्में भी काफ़ी लिखी हैं । जबान सीधी-सादी मगर दिलकश है, फ़ारसियतका रंग बहुत ही कम है । मीठी, ऊँची और सुरीली आवाज़में अपने गीत गानेके लिये आप बहुत मशहूर हैं । आपकी कविताके चार संग्रह प्रकाशित हुअे हैं जिनमें ‘दर्दे जिन्दगी’ मशहूर है ।

अख़्तर शेरानी

अख़्तर शेरानी अपने मीठे गीतोंके लिये मशहूर हैं । आप खालिस रुमानी

शायर हैं। कलाममें बड़ा लुत्फ आता है मगर उसमें गहराअरी या वजन नहीं है।

अख्तरकी कवितामें आप अपनेको चाँद-सितारोंकी घाटियोंमें पायेंगे जहाँ फूलोंकी सुगंधिसे बयार अन्मत्त है, जहाँ संसारका कोलाहल चुप हो गया है और जहाँ स्निग्ध ज्योत्स्नाकी चादर ओढ़े 'रीहाना' 'मरजीना' 'सलीमा' कविकी थकी हुआरी रूहको शान्ति प्रदान करने आती हैं।

—*:*—

अिन कवियोंके अलावा नीचे लिखे कवियोंके नाम भी शायरीकी दुनियामें बहुत मशहूर हैं।

फ़ानी बदायूनी, नासरी, ज़ामन, असर, जलील, साक्रब लखनवी, ज़रीफ़, आरजू, रियाज, असगर-गोंडवी, 'जिगर' मुरादाबादी, 'सायल' देह-लवी, यास व चगाना, महरूम, अिन्द्रनारायण मुल्ला, सीमाब, फ़ितरत, मिज़ाज, रविश, वगैरह।

—*:*—

परिशिष्ट २

आजके गद्य-लेखक

नावेल और अफ़साने

अर्द्ध ज़बानके शुरूसे ही उसमें अफ़साने पाये जाते हैं। लेकिन बीसवीं सदीके शुरू होने तकके अफ़साने बिलकुल पुराने ढंगके और बग़ैर किसी खास टेक्निकके होते थे। अंग्रेज़ी ज़बानके फैलनेके साथ साथ हिन्दुस्तानकी दूसरी ज़बानोंकी तरह अर्द्धमें भी नावेलों और किस्से-कहानियोंके तंत्र या टेक्निकका दौरदौरा शुरू हुआ। आजकल अर्द्धमें क़ाबिली तरहके नावेल और अफ़साने हर माह निकलते रहते हैं। नये ढंगके लेखकोंमेंसे नीचे लिखे लेखक बहुत मशहूर हैं।

राशिद अलखैरी

मौलाना नज़ीर अहमदकी तरह राशिद साहब औरतोंकी अिसलाह और तरक्क़ीके हामी हैं। आपकी कहानियाँ नैतिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखी हुआ होती हैं। आप पुराने रस्मों-रिवाज़ोंके पूजक हैं अिसलिये अपने किस्सोंके जरिये लोगोंकी मगरिबी तहज़ीबकी कोराना तकलीदसे रोकते हैं और नज़्मी रोशनी व तालीमकी मुख़ालिफ़त करते हैं। आपने बच्चोंकी फ़ितरत (स्वभावधर्मका) का मताला (अध्ययन) करके अ़नके लिये मौज़ू किताबें लिखी हैं। आपकी ज़बान दिल्लीकी तराशी हुआ ज़बान है। नस्वानी (औरतोंके) मुहावरोंके अिस्तेमालसे आपके कलाममें रंगीनी पैदा हो जाती है। आपके ज़्यादातर किस्से और नावेल दुःखांत हैं। मुस्लिम देवियोंमें आपकी किताबोंका बड़ा प्रचार है। आपने तीस चालीससे ज़्यादा किताबें लिखी हैं जिनमें 'स्मर्नाका चाँद' 'शाहीन व दुराज़' 'सुबहे ज़िन्दगी' 'शामे ज़िन्दगी' 'शबे ज़िन्दगी' वग़ैरह मशहूर हैं।

अली अब्बास हुसैनी

प्रेमचन्दकी तरह हुसैनी साहबके कलाममें मुक़ामी रंग काफ़ी है। देहातोंके भोलेभाले और सच्चे जीवनकी तस्वीरें बिलकुल हबहू खींचते हैं।

अिनकी कहानियोंके प्लाट निहायत दिलकश और कितरी होते हैं । आपकी ज़बान साफ़ और बामुहावरा है । आपने हिन्दीके लफ़्ज़ोंका भी अिस्तेमाल बड़ी ख़बीसे किया है । 'आअि. सी. अेस.' और 'बासी फूल' आपके दो प्रकाशित कहानीसंग्रह हैं ।

—X—

अख़्तर हुसैन रायपूरी

अंग्रेज़ी कहानी-कलाका अच्छी तरह अध्ययन करके अख़्तर साहबने अुर्दू और हिन्दीमें नये नये ढंगकी कहानियाँ लिखी हैं । आजकलके सामा-जिक और आर्थिक प्रबंधकी ख़राबियोंपर आप बुरी तरह टूट पड़ते हैं । आप हिन्दी और अुर्दूके अच्छे जानकार हैं अिसलिये आप ख़ालिस हिन्दुस्तानीमें भी अच्छी तरह लिख सकते हैं । आपके अक़सानोंका मजमूआ 'मुहब्बत और नफ़रत' बहुत मशहूर हैं ।

कृष्णचन्द्र

आप तरक्क़ीपसंद लेखक हैं । आपने बहुत थोड़े असेंमें बड़ी सुहरत पायी है । आपकी कहानियाँ वास्तविकताका आधार लिये हुआ होती हैं । जो शमा प्रेमचन्दने रोशन की थी उसकी लौ कृष्णचन्द्रके हाथों बढ़ती रहेगी अैसी अुम्मीद की जाती है । आपकी कहानियोंका अेक संग्रह 'जिन्दगीके मोड़पर' अभी अभी शायी हुआ है । हिन्दुस्तानकी अलग अलग ज़बानोंसे प्रगतिशील कहानियोंका अुर्दूमें तर्जुमा करके उनका अेक संग्रह 'नये अक़साने' के नामसे आपने संपादित किया है ।

—(X)—

अपेन्द्रनाथ अशक

यह अेक नौजवान लेखक हैं जिन्होंने बहुत थोड़े असेंमें अपनी कलाकारीका सिका जमाया है । महाशय सुदर्शनकी भाँति यह भी प्रेमचन्दकी लेखनशैलीका अनुकरण करते हैं । प्लाटके विचारसे अिनकी कहानियाँ

मनोरंजक होती हैं। अिनकी कहानियोंके कथी संग्रह छप चुके हैं। अिनहोंने ‘अुर्दू काव्यकी नयी धारा’ नामकी अेक किताब हिन्दीमें लिखी है जिसमें आजकलकी अुर्दूकी आसान कविता और अुसके लिखनेवालोंका थोड़ेमें परिचय कराया गया है।

नियाज फतहपुरी

लखनअूके प्रसिद्ध मासिक पत्र ‘निगार’ के आप सम्पादक हैं। अरबी, फ़ारसी और तुरकी ज़बानें जानते हैं। आपकी भाषा कृत्रिम और अरबी शब्दोंसे भरी होती है। ‘क्योपिड और साअिकी’ और ‘शायरका अंजाम’ आपके दो मशहूर अफ़साने हैं। आपके अफ़सानोंके दो मजमूअं शायो हो चुके हैं जिनके नाम हैं ‘निगारिस्तान’ और ‘खयालिस्तान’। आपकी दूसरी किताबोंके नाम हैं, ‘तारीख अुद्दौलतीन’ ‘गहवारा अे तमद्दुन’ ‘फ़ासत अुलीद’ ‘अलमस्ता अल शरकिया’ ‘जज्बाते भाषा’ ‘तरगीबाते जिन्सी’ वगैरह।

—०—

अिनके अलावा नीचे लिखे लेखक भी बहुत मशहूर हैं:—सज्जाद हैदर ‘यलदरम’, सुलतान हैदर ‘जोश’, ‘मजनू’, जलील क़िदवाअी, आजम करेलवी, अहमद शुजा, अमितयाज अली ‘ताज’, कृष्णप्रसाद कौल, रणवीरसिंह ‘वीर’ वगैरह।

२ हास्यरस [मज़ाहिया अफ़साने]

दीगर हिन्दुस्तानी ज़बानोंकी तरह अुर्दूमें भी शुरू शुरूमें अूँचे दर्जेके हास्यरसकी किताबें बहुत कम पायी जाती थीं। हास्यरसके नामपर भद्दा परिहास ही पाया जाता था और पाठकोंको अुसीमें मज़ा आता था, लेकिन जैसे जैसे अंग्रेज़ी साहित्यका अध्ययन बढ़ता गया वैसे वैसे अूँचे दर्जेके हास्यरसकी कल्पना लोगोंको आती गयी और हिन्दुस्तानी ज़बानोंमें सुसंस्कृत परिहास आने लगा। आज अुर्दूमें जो हास्यरस दिखाअी देता है वह बहुत

कुछ ऊँचे दर्जेका है; फिर भी मराठी या बँगलाके मुक्ताबलेमें वह बहुत ही निचले दर्जेका समझा जायेगा। हास्यरस लेखकोंकी संख्या अँग्रेज़में बहुत कम है। उनमेंसे कुछ लेखक ये हैं:—

पितरस

श्री अहमदशाह बुख़्तारी 'पितरस' गवर्मेण्ट कालेज लाहौरके प्राध्यापक हैं। अंग्रेज़ी अदबके एक अच्छे हिन्दुस्तानी अदीब होनेके साथ आपको अपने मुल्क और ज़बानसे भी दिलचस्पी है। आपके अफ़सानोंका मक़सद सिर्फ़ हँसना और हँसाना नहीं बल्कि उनके लिखनेमें वह अमलाहका कोअरी नुक्तता मद्देनज़र रखते हैं। आपका परिहास भद्दा नहीं बल्कि अंग्रेज़ीका असर लिये हुआ ऊँचे दर्जेका होता है। किसीकी कमज़ोरीपर आप अपने अफ़सानोंकी बुनियाद नहीं रखना चाहते। आप बहुत कम लिखते हैं मगर जो लिखते हैं वह वास्तविकताका आधार लिया हुआ होता है। आपकी ज़बान साफ़ और सादा होती है मगर आप बीच बीचमें पंजाबी मुहावरोंका अस्तेमाल करके उसे मुश्किल भी बना देते हैं। आपके लेखों और कहानियोंका एक संग्रह 'पितरसके मज़ामीन' के नामसे छप चुका है।

मिर्ज़ा अजीमबेग चग़ताबी

अँग्रेज़ों के हास्यरस लेखकोंमें सबसे ज़्यादा मशहूर मिर्ज़ा अजीमबेग चग़ताबी ही थे। अन्होंने जब पहले पहल मज़ाहिया मज़मून या अफ़साने लिखने शुरू किये तब उनके सामने अपने रस्मोरिवाज़ोंके सुधारका मक़सद था। अन्होंने 'कुरान और परदा' जैसी संजीदा (गंभीर) किताबें भी लिखी हैं। 'कमज़ोरी' वगैरह दर्दनाक अफ़साने भी अन्होंने लिखे हैं मगर उनकी शहरत 'शरीर बीबी' और 'कोलतार' अिन दो हास्य-रसकी किताबोंसे बहुत ज़्यादा फैली है। मिर्ज़ा साहब अिस्लामी रस्मोरिवाज़ोंमें सुधार करनेके हामी थे अिसलिये कट्टर मुसलमान अिनका विरोध करते थे। अभी कुछ रोज़ हुआ अिनक अिन्तकाल हुआ।

शौकत थानवी

आजकलके हास्यरस लेखकोंमें शौकत थानवी ही सबसे ज़्यादा मशहूर हैं। वैसे आपकी गज़लोंका श्रेक मज़मूआ 'गहरिस्तान' नामसे शायया हुआ है मगर आपकी सुहरत खासकर मज़ाहनिगारी (परिहास) और तबस्सुमात (हास्यरस) के कारण ही हुअी है। आप अफसाने बहुत कम लिखते हैं। आपका लेख रोज़ाना ज़िन्दगी और अुसकी मामूली बातों पर श्रेक लतीफ (मजेदार) मज़मून होता है। आपने मौलवी मुहम्मद अिस्माअिल की रीडरोंमेंसे कविताओंकी पहली पंक्तियाँ लेकर अनपर अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'सुनाऊँ तुम्हें बात अिक रात की' या 'लाडला बेठा था अिक माँ-बाप का' वगैरह। आपकी हास्यरसकी किताबोंमेंसे ये बहुत मशहूर हैं:—'मौजे तबस्सुम' 'सैलाबे तबस्सुम' 'तूफ़ाने तबस्सुम' 'बहरे तबस्सुम' वगैरह। आजकल आप लखनऊसे 'सरपंच' नामका अेक हफ़तावाराना अखबार निकालते हैं।

अिन तीन लेखकोंके अलावा अुर्दूमें नीचे लिखे लेखक भी हास्यरस लिखनेके लिये मशहूर हैं:—मिर्जा फरइतुल्ला बेग, रशीद अहमद सिद्दीकी, मुल्ला रमूजी वगैरह।

३] गम्भीर विषय (मक्रालात व सहाफ़त)

अुर्दू ज़बानकी पैदाअिश ही कुछ अैसे कारणोंसे हुअी थी कि शुरूके ज़मानेमें अुसमें गंभीर विषय आना कुछ नामुमकिन-सा था। यानी जो ज़बान बाज़ार और वयौपारके मामूली काम चलानेके हेतुसे पैदा हुअी हो और बाद में जिसमें दिलबहलावके लिअे शेर शायरी, क्रिस्से व कहानियाँ लिखी जाने लगी हों अुसमें फ़िलसफ़ाका लिट्चर कहां से आये ? कुछ किताबें दूसरी ज़बानोंसे तर्जुमा होकर ज़रूर आयी थीं मगर अुनकी तादाद बहुत कम थी। अंग्रेज़ी ज़बानके परिचयसे अुर्दूवाले यह कमी महसूस करने लगे और तबसे अुर्दूमें अच्छी अच्छी चर्चात्मक दार्शनिक किताबोंके तर्जुमें होने लगे। अिन तर्जुमा करनेवालोंमें मौलाना अब्दुल माजिद दरयाबादीका नाम विशेष अुल्लेखनीय

है। अन्होंने निहायत-जॉ फ़िशानी और काबिलियतके साथ अिस विषयपर मुस्तक़िल किताबें भी लिखीं और कारअामद किताबोंका ग़ैरजबानोंसे अुर्दूमें तर्जुमा भी किया। आपकी मशहूर किताबें ये हैं:—‘फ़िलसफ़ाअ़े जज़्बात’ ‘फ़िलसफ़ाअ़े अज़तमाअ़’ ‘मक़ालमाते बस्क़ले’ वग़ैरह। अन्होंने तर्जुमेकी जबान बड़ी साफ़ और बामुहावरा रखी है। वैसे अिस विषयकी किताबोंमें अरबी और फ़ारसीके मोटे मोटे अलफ़ाज तो आयेंगे ही, मगर तनक़ीद (टीका), और मामूली मजमूनोंकी जबान बड़ी आसान और रोजमर्राकी होती है। कुछ पुराने लफ़्ज़ जैसे ‘तअी’ ‘अोर’ ‘पस’ वग़ैरह का भी यह अिस्तेमाल कर जातै हैं।

मौलाना साहबके अलावा अुर्दूमें चर्चात्मक और दार्शनिक विषयोंपर लिखनेवाले लेखक ये हैं:—‘मौलाना सैयद सुलेमान नद्वी,’ ‘ख्वाजा अली हसन अुर्फ़ हसन निज़ामी,’ ‘मौलाना अबुल कलाम आज़ाद,’ ‘अदीबुलमुल्क नसीर हुसैन ख़याल,’ ‘जफ़र अली ख़ाँ,’ ‘मसअूद हसन,’ ‘डॉक्टर मुही-अुद्दीन जोर,’ वग़ैरह। अिनमेंसे कुछका परिचय हम थोड़ेमें देते हैं।

मौलाना सैयद सुलेमान नद्वी

मौलाना शिब्ली मरहूमकी ‘शिब्ली अ़ेकेडमी’ (दारुलमुसन्निफ़न) के ये सदर हैं और बड़ी ख़ूबीसे अिसका कारोबार चलाते हैं। यह शिब्लीके सही जानशीन (मित्र) साबित हुअ़े हैं। शिब्लीकी तरह अिनको भी तारीख़ से ख़ास शग़फ़ है। अिनकी अिबारतमें अदबियत और पुरतगीके अलावा अिलिमयतका भी जख़ीरा रहता है। नाहक़ अरबी-फ़ारसीके मोटे लफ़्ज़ोंका अिस्तेमाल नहीं करते। ये अरबी-फ़ारसीके जबर्दस्त आलिम हैं मगर अुर्दूकी नख़्ख़में मौलवियाना रंग कभी नहीं पैदा होता और न मजमूनमें कभी खुशकी आती है। अुर्दूके अक्वल दर्जेके वक्ताओंमें से ये अ़ेक हैं। अिनका रिसाला ‘मअ़ारिफ़’ अदब व क़ौमकी काबिले क़द्र ख़िदमत करता आया है और अपने अिलमी मजमूनोंके अ़ैतबारसे मुल्कमें अ़ेक बलन्द पाया रिसाला समझा जाता है। क़ौमी जबान हिन्दुस्तानीके ये बड़े हामी हैं।

—X—

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद'

आज सारा हिन्दुस्तान मौलाना आज़ाद साहबको ज़्यादातर कांग्रेसके प्रेसिडेंटकी ही हैसियतसे पहचानता है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि मौलाना साहब अर्द्ध साहित्यमें बहुत आला दर्जा रखते हैं। मौलाना साहबने कुराने शरीफ़का अध्ययन अतना गहरा कि या है कि उनकी हर तहरीर (लेख) और तक्रीर (भाषण) में कहीं न कहीं उसका हवाला जरूर दिया जाता है। अन्होंने कुरानका जो अर्द्ध तर्जुमा किया है वह मकबूले आमोखास हो गया है। अिस तर्जुमेके अलावा अिनकी कोअी सुस्तक़िल अदबी तसनीफ़ तो मालूम नहीं होती मगर अपने 'अल् हिलाल' और 'अल् बलाग' अिन अखबारोंमें अन्होंने मजहबी, समाजी और राज-काजी विषयोंपर जो मजमून लिखे हैं उनके कअी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके मखसूस अन्दाजे तहरीरने मौलाना आज़ादको अर्द्धके बेहतरीन अिन्शापरन्दाजोंकी सफ़में जगह दिला दी है। मौलानाकी तक्रीरकी तरह तहरीर भी अेक सहर (जादू) होता है कि जिसको अव्वलसे आख़िर तक बग़ैर पढ़े छोड़नेको जी नहीं चाहता। लफ़्ज़ोंकी बन्दिश अैसी है कि अगर अेक लफ़्ज़को उसकी जगहसे हटाकर दूसरी जगह रखना चाहें तो तमाम अिवारतके बेलुत्फ़ हो जानेका अन्देशा रहता है। अलफ़ाजका अिन्तखाब ज़्यादातर अरबी और फ़ारसीके जख़ीरेसे होता है मगर बड़े मीठे और दिलक़श लफ़्ज़ोंको चुनते हैं। 'जोश' और 'अिक़बाल' की तरह आज़ादकी तहरीरमें आमतौरसे जोश और पयामे अमल होता है। अिस वक़््त फ़सीह और बलीग अर्द्धमें गुफ़्तगू करनेवाला आज़ाद साहबसे बेहतर शायद ही कोअी होगा। जवानपर ऐसा अधिकार है कि सुननेवालोंको चाहे जब हँसा सकते हैं चाहे चब रला सकते हैं और चाहे जब नादमुग्ध हिरनकी भौंति मुग्ध कर सकते हैं। अिसलिये आज़ाद साहबकी तक्रीर सबके लिये बड़े आकर्षणकी चीज़ बन गयी है। 'तजक़िरा' नामसे अन्होंने अपनी आत्म-कथा लिखी है जिसमें अन्होंने जिन्दगीके शुरू शुरूके हालात बड़ी काव्यमय भाषासे बयान किये हैं। देशभक्तिके गुनाहकी वजहसे आज़ाद

साहबको अपनी जिन्दगीके बेशक्रीमत साल जेलोंमें गुजारने पड़े हैं ।
अुन्होंने अिस मजबूरन दिये गये आरामका अुपयोग लिखने-पढ़नेमें करके
अुर्दू जवानपर बहुत बड़ा अेहसान किया है ।

—x—

सूची

(अ)	अफ़सुरदा	६३
अंधेकी दुनिया	१३९ अफ़सोस	१०२, १०५
अकबर (बादशाह)	१३० अबुल फैज़ी	१३०
अकबर (अलिहाबाद) ८१, ८८, ६१,	अबुल हसन	१८
१३९, १४१	अब्दुलकरीम	१०७
अकबर शाह	६७ अब्दुल काबिर	१४२
अख़्तबारे आम	१४० अब्दुल बारी	११७
अख़्तर (बाजिदअली शाह) ५४-५६,	अब्दुल मजीद	१२४
१२६, १३४	अब्दुल माजिद	११७, १३८, १६१,
अख़्तर शेरानी	१५४, १५५	१६२
अख़्तर हुसैन रायपूरी १३२ अ, १५८	अब्दुल लतीफ़	१३२ अ
अजगर नामा	३०, ३१	अब्दुल हक़ ७४, १२४, १२८
अजमल	१४१	अब्दुल्ला १७, १८
अजीज़मिर्जा	१२४	अमानत ५६, १३५
अजीम बेग़ चग़ताअी १३२ अ, १३९,	अमानी	५९
१६०	अमामी	६०
अज़मतुल्ला	८०	अमीर अहमद मीनाअी ७२-७६
अदबी दुनिया	१४२	१२६, १२७
अदीब	१४२	अमीरख़ाँ २२
अनवर	७०	अमीर हम्ज़ा १३०
अनवरी	२७, ६७	अमीरुल्लुगात ७३
अनीस ३६, ४७, ५९, ६०-६२, ७३	अय्यामा	११५
अन्तारी	१४२	अरबकी शायरी १२७
अफ़सक़	३९	अल फ़ारूक़ १११

अलबलागी	१६३	आगाई	१२
अल मस्ला अल शरकिया	१५९	आगा इश्र काश्मीरी	१३८
अल हिलाल	१६३	आजम करेलवी	१५९
अलिफ लैला	१३०	आजाद (अबुल कलाम)	१५०, १५३, १६२-१६४
अली अब्बास हुसैनी	१५७, १५८		
अली आदिलशाह	१८	आजाद (मुहम्मद हुसैन)	६१, ६७
अलीगढ़ अग्निस्टट्यूट गज़ट	१११		८१, ८२, ११५, १२०, १२२, १२८, १४०
अलीनामा	१८		
अलबर्ट बिल	१३९	आजाद (सैयद मुहम्मद)	१४१
अल्लाअुद्दीन खिलजी	१५	आजाद कथा	१३१
अवध अखबार	१३१, १४०, १४१	आतिश	१२, २३, ४४, ४९, ५३, ८९
अवध पंच	१३१, १३९-१४१	आफताब	४०, ४५
अश्क	१३२ अ, १५८, १५९	आफताबे दाग	७६
असगर	१५५	आबरू	१९, २५
असद	६५	आबाद	५७
असबाबे बगावते हिन्द	१११	आबे हयात	१२१
असर	१५५	आरजू	१५५
असर (ख्वाजा मीर)	३७	आरजू (खाँ)	१९, २१, २४, २७, ३०
असर (लखनवी)	१२८	आराहिशे महफिल	१०५
असीर	५५, ७३	आरिफ	६०, १५३
असीरे हिर्स	१३८	अर्नाल्ड	९४, ९६
अहमद अली	१३२	आलमगीर	१४२
अहमद गुजा	१३८, १५९	आशिक	१०७, १४१
अहसन माहरवी	७७, १२८	आसफुद्दौला	३०, ३५, ५५
अहसन (मेहदी हसन)	१३७		
		अ	
आ		अिडियन पिनल कोड	११६
आँखका नशा	१३८	अिडियन ओविडन्स अैक्ट	११६
आभि. सी. अेस.	१५८	अिकबाल	७७, ८१, ८८, ६४, ९७,

	१५२, १६३	अर्दू (अखबार)	१४०
अिकराम अली खॉं	१०२	अर्दू (रिसाला)	१२७, १२८
अित्तहाद	१३०	अर्दू अे मुअल्ला	६६, १०७
अिन्क़िलाब	१४१	अर्दू कव्यकी नयी धारा	१५९
अिनतिखाबे सुलतानिया	१०७	अुस्मान	७७
अिन्दर सभा	५६, १३५	अू	
अिन्द्र नारायण मुल्ला	१५५	अूदे हिन्दी	६६, १०६
अिन्शा १२, ३८-४२, ४४, ४७, ४९, ५३, ६२, १०७		अै	
अिन्साअे सुहूर	१०८	अैम् असलम	१३६
अिन्साफ़े महमूद शाह	१३७	अैहसान दानिश	१५४
अिबरत	१५३	अै	
अिबरतुल गाफ़िलैन	२९	अैने कैसरी	१२२
अिठन निशानी	१८	अैनी बेजंट	९२
अिब्राहिम आदिल शाह	१८	अैश	८१
अिमामबख्श सहबाअी	१०२, १२४	अैशी	४४
अिरशादुस्सुलतान	१२६	अो	
अिव्मअुल अिक्तसाद	९४	अोरिअेटल लिग्वैस्टिक	१०५
अिश्क़	५७	अौ	
अिसरार अुस्सलाता	३४	अौरंगजेब	२१, २४
अिसरारे खुदी	९५	अौलादकी शाही	१३१ अ
अिस्माअील	१०७	क	
अ्री		कतील	४१
अ्रीमाँ	२०	कत्ले नज़ीर	१३७
अ्रु		कमजोरी	१६०
अुन्स	३६, ६०	कमतरीन	३७
अुफ़क़	१३८	करीमुद्दीन	१०२
अुमराव जान अदा	१३०	अ्र कर्मभूमि	१३२ अ
			१६७

कलीम	१५१	कैफ़ी	१३२ अ १३८
कवायदे अर्द	१२८	कैस	१६८
कस्सिसे हिन्द	१२१	कोलतार	१३९, १६०
कांग्रेस	९२	कोहेनूर	१४०
कादिर	५६	कौस कज़ह	१३३
कानूने फ़ौजदारी	११६		
कानूने माल	११६	ख	
कामयाब	१४२	खयाल	१६२
कामरूप और कला	१८	खलीक	३६, ४४, ५९, ६०
कामिनी	१३१	खलील	५४, ७३
कायम	३७, ४५	खलक	६०
कायाकल्प	१३२ अ	खवाने खलील	१८
कायापलट	१४१	ख़ाकानी	२७
कावसजी खराब	१३७	ख़ाके वतन	८६
कासिम व जहरा	१३७	खानमखाँ	१३९
किताबे अजायबे रोज़गार	१२३	खालिक बारी	११
किस्सा अे अमीर हम्ज़ा	१०७	खिलाफ़त	१४१
किस्सा हातिम तथी	१३०	खुदाथी फ़ौजदार	१३१
कुतबा	१६, १७	खुदाबख़्श	५०
कुदरत	४५	खुम खानाअे जावेद	१२८
कुरान और परदा	१६०	खुमखानाअे सुरूर	८६
कुरैशी	१३८, १३९	खुर्शेदजी बालीवाला	१३७
कुल्लियाते अिक़बाल	९५	खुसरो ११-१४, २४, ४८, ६५, १००	
कुल्लियाते नज़्मे ग़ालिब	६५	ख़ूबसूरत बला	१३८
कृष्णकुमार	१३२ अ	ख़्वाजा बासत	३२
कृष्ण चन्द्र	१३२ अ, १५८	ख़्वाजा हसन	४३
कृष्णप्रसाद कौल	१५९	ख़्वाबे अमन	८२
कृष्णबीती	१३१ अ	ख़्वाबो खयाल	३१
कृष्ण सुदामा	१३८	ख़्वाबो खयाल (प्रेमचंद)	१३२ अ

ग	चचा छकन	१३६
गंगावतरण	१३८ चटर्जी	१३३
गंगू	१५ चलता पुरजा	१३७
गंजीनअे खूबी	१०५ चहार दरवेश	१०१, १०५
गदा	६३ चॉसर	२०
गरायबुल्लुगात	२४ चिरकीं	३९
गरीबका चिराग	१३० अ चुटकियाँ	१३४
गहरिस्तान	१६१ चुपकी दाद	९४
गौंधी (महात्मा)	९२	.

ज

गालिव	५३, ६४-६७, ७७, ८३, १०८, १०६, ११३, १५१	जकाबुल्ला	११५, १११
गुप्त (मैथिलीशरण)	८४	जकी	५७
गुलजारे अब्राहीम	७८	जख्मी पंजाब	१३९
गुलजारे दाग	७६	जगन्नीती कहानियाँ	१३१
गुलजारे नसीम	३६	जड़बाते भाषा	१५९
गुलदस्ता अे नतीजा अे सखुन	१४२	जदो पशो मै	१३८
गुलबकावर्ती	१३०	जफ़र (बहादुर शाह)	४५, ६४, ६७- ७१, ७५
गुलाबी झुर्दू	१३९	जफ़र अलां खाँ	१६२
गुलाम अिमाम शहीद	१०७	जमाना	१२७, १३२ अ, १४२
गुलिस्तां सादी	१०५	जर्मीदार	१४१
गोखले	९२	जमीर	४४, ५९, ६२
गोदान	१३२ अ	जरीफ़	१३७, १३८, १५५
गोपीचंद	१३७	जलवाअे अीसार	१३२ अ
गोया	१०७	जलील	७३, ७४, ११५

च

चंदन	१३३	जवान	१०२, १३५
चंद्रावली	१३७	जहाँ	१०२
चकबस्त	८८, ६१-९४	जंहीर	७०

जहीरी	६८	डिक्शनरी (फैलन)	१२५
जॉन गिलकाश्चिस्ट १०२, १०४, १०५		त	
जान ज़राफ़त	१३८	तंजीमुल हयात	१५३
जान साहब	४५	तंबीहुल गाफ़िलैन	२४
जानी	३९	तकमील अल कलाम	१२५
जाफ़र अलीख़ाँ	१२८	तक्विय अल श्रीमान	१०७
जामन	१५५	तजकिरा	१६३
जामिया	१४२	तजकिराअुरशुअरा	२४
जामे सरसार	१३१	तजकिरा अे आरजू	२४
जामे सुरूर	८६	तजकिरा अे शुअरा अे अुर्दू	२७
बाहक	३७	तजकिरात अल कामिलीन	१२३
जिगर	१५५	तनहा	४४
जिन्दगीके मोड़पर	१५८	तफ़सील अल कुरान	११२
जिया	१३१	तरगीबाते जिन्सी	१५९
जिल्ले अलाह	१७	तरानाअे हिन्दी	६५
जीनत मुहल	५५	तसलीम	७४
जुरअत	१२, ३८, ३६	तस्कीन	६९, ७०
	४२-४४, ४९	तस्खीरे फ़ान्स	१३८
जोश (मलीहाबादी) १५१, १५२, १६३		तहकीक अल कलाम	१२५
जोश (सुलतान हैदर) १३९, १४९		तहजीबअल अख़लाक १११, ११९, १४२	
जोशे अिश्क	३१	तहसीबुद्दीन	१८
जौक	२३, ६४, ६७, ६८	ताज	१३८, १३९, १५९
	७०, ७५, ८१	तानाशाह	१८
ट		ताबॉ	२४, २५
टेलर	१०२	तायरे खयाल	१३३
टैक्स अैकट	११६	तारीख अुद्दौलतीन	१५९
टोलरमल	१२८	तारीखे बिजनौर	१११
ड		तारीखे हिन्दोस्तॉ	११०
डिक्शनरी (जान गिलकाश्चिस्ट)	१०५		

तिरयाक अ मसमूम	११४	दीवाने रेख्ता	१४, १६, २१, २२
तिलक (लोकमान्य)	९२	दीवारे कुहन	८७
तुफता	६६	दुख्तर	६०
तुर्की हूर	१६८	दुनियाअ तबस्सुम	१३९
तुलसीदासकी शायरी	१२७	देहातकी लङ्की	१३०
तूफाने तबस्सुम	१३६, १६१	न	
तेज	१४१		
तैश	१०७	नगमाजार	१५२
		नज़ीर (अकबराबादी)	४६--४८, ६५, ७९
		नज़ीर अहमद	११२, ११५, ११६
द			१२२, १२३, १३०, १५७
दफ़तरे परेशाँ	५१	नज़्मे आजाद	८१
दबीर	४७, ५९, ६२, ६६, ७३	नज़्मे सिराज	५१
दयानारायण निगम	१२७, १२८, १४२	नदीम	५९
दर	९२	नन्हेकी माँ	१३९
दरख़्शाँ	५५, ५९	नफ़रतका बीज	१३९
दरियाअे अिशक	३१	नफ़ीस	६०
दरियाअे लताफ़त	१२, ४१, १०७	नया अदब	१५१
दर्द	२४, ३३, ३४, ३६, ६७	नया शिबाला	९५
दर्दे ज़िन्दगी	१५४	नये अफ़साने	१५८
दह मजलिस	१०१	नल दमयन्ती	८६
दाँव पेंच	१३७	नवल किशोर	१४०, १४१
दाग	७२, ७४--७७	वादिरुल अलफ़ाज़	२४
दिलकी प्यास	१३८	नवाब	७२, ७५
दिलगीर	५६, ५६, ६३	नसरती	१८
दिलगुदाज़	१२९ अ, १३० अ, १४२	नसीम (खैराबादी)	१५३
दिलफ़े	१३९	नसीम(दयाशंकर कौल)	३६, ५४
दिलरेशेर	१३७		५६, ६९, ७०
दिलफ़रोश	१३७		
दीवानज़ादी	२३	नसीम(लखनवी)	१५१

नहीं	१३०	अपदिमनी	८६
नाज़िम	७२	पयामे आशिक	१४२
नाजी	१९, २५	पयामे मशरिक	९५
नानी अशो	१३९	पयामे यार	१४२
नाला अरे दर्द	३४	परदाअरे शकलत	१३८
नाला अरे यतीम	९५	पितरस	१६०
नासरी	१५३, १५५	पितरसके मजानीन	१६०
नासिख	२३, ४६, ४९-५४, ७२, १३५	पीकहाँ ?	१३१
निकातुशुअरा	२७, ३१	पेस्तनजी फ़रामजी	१३७
निगारिस्तान	१५९	प्यारी दुनिया	१४१
निगारिस्ताने फ़ारिस	१२०	प्रेमचन्द	१३१, १३२ अ १३३
नियाज़ फ़तहपुरी	१५६		१५७, १५८
निशाते झुम्मीद	८३	प्रेमपचीसी	१३२
निहाल चन्द	१०२	प्रेम बतीसी	१३२ अ
नूरजहाँ	८६		
नूरे तजल्ली	७३		
नेक परवीन	१३८	फ़ख़रो	७५
नैरंगेखयाल	१२१, १४	फ़जली	१०१
नौ तर्जे मुरस्सअ	१०१	फ़रयादे दाग	७६
नौरस	१८	फ़रहंगे फ़िरंग	१२२
नौरस नामा	१८	फ़रहंगे आसफ़िया	१२५
		फ़रहतुल्ला बेग	१३२ अ १३९, १५१
		फ़रासन अलीद	१५६
प		फ़रुख़सियर	१३५
पच आहंग	७३	फ़सीह	५६, ६३
पंजाबमें अर्दू	१४	फ़ानी बदायूनी	५१५
पंजाब रिब्यू	१४२	फ़ितरत	५१५
पंजाबी अख़बार	१४०	फ़िदवी	३७
पत्नी प्रताप	१३८	फ़िराक	१५३
पद्मावत	१२		

फिराग	३७	बाकर हुसैन	१४७
फिर्दौसबरी	३३० अ	बाकी	७७
फिर्दौसी	६१	बागीका ख्वाब	१५४
फिर्दौसे खयाल	१३२ अ	बागो अर्दू	१०५
फिलसफाअे अजतमाअ	१६२	बागो बहार	१०, १०५
फिलसफा अे श्रीरान	६५	बाजारे हुस्न	१३२ अ
फिलसफाअे जज़्बात	१६२	बाले जबरील	९५
फिल्मिस्तान	१४२	बासी फूल	१५८
फिसानाअे अजायब	१०८, १३०, १३२	बिगडे दिल	१३८
फिसानाअे आजाद	१३१, १३२	बिछुड़ी दुलहिन	१३१
फूलबान	१८	बिशन नारायण	८२, १२८
फूलमाला	९२	बुद्ध भगवान	१३८
फ़ज़ी	६५	बेखबर	१२४
फ़ैलन	१२५	बेखुद	७७
फौलाद खाँ	२४	बेगुनाह मुजरिम	१३३
		बेताब	१३७
बग्घी	४३	बेताल पचीसी	१०६, १३०
बनदेवी	१३८	बेदार	४५
बनातुन्नाश	११५	बेदारी	१३८
बयान	४५	बेवीकी तालीम	१३१ अ
बरखारुत	८३	बोस्ताँ खयाल	१३०
बर्क	५२, ५५, १४१	भ	
बर्क त्रिसलाह	९२		
बन्ह	५७	भागमती	१७
बहरे तबस्सुम	१६१	भारत भारती	८४
बहार	५५	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१३५
बांगेदरा	९५	म	
बाकर	१२		
		मआरिफ	६२
		मकालमाते बरकले मखजन	१४२

मच्छू बेग	१३९	महमूद शेरानी	१४
मजनूँ	१५६	महरूम	१५५
मजमा झुल नफायस	२४	महशर	१३० अ
मजमूआ अत्रे मौलूदे शरीफ	१२३	महाभारत	१३७
मजमून	१९, २०	मारफत अिलाही	८१
मजरूह	६६	मारुफ	१४२
मजहर	२४, २५	मिक्री	३७
मतलाअत्रे तूर	१४०	मिजाज	१५५
मदारीलाल	१०२	मिन्नत	४५
मदाह	१५३	मिरातुल अरूज	११५
मदीना	१४२	मिर्जाजी	१३९
मनकी मौज	१३३	मीठी छुरी	१४१
मनोहरलाल जुत्शी	१२८	मीर अम्मन देहलवी	१०१, १०२,
मन्सूर मोहना	१३० अ		१०५
ममनून	४५	मीरतकी मीर	२४, २६, २७, ३०,
मरातुल गैब	७३		३३, ४४, ४७, ५०, ५३
मरातुल हिन्द	१३१		५४, ५९, ६५, ६६.
मरसला काश्मीरी	१३१	मीरनजी शम्सुल अउशाक	१०१
मलफूजातेयामी	१३९	मीर लाल	१०९
मलार मौजी	१३९	मीर हसन	२४, ५९
मलिक मुहम्मद जायसी	१२	मुआजिना अत्रे अनीस वदवीर	११८
मसअूद हसन	१६२	मुकुन्दराम	१४०
मसदर	३९	मुनाजाते बेवा	८४
मसनवी बेनुक्त	४१	मुनीर	५२, ५७
मसहफ्री ३६, ३८, ३९, ४३, ४९,		पुरारी दादा	१३६
५३ ५९, ६२, ६७, १३९		मुल्लाजहूरी	१८
मस्कीन	६३	मुल्ला रमजी	१६१
महताबे दाग	७६	मुसद्दे हाली	८३, ८४
महफूजअली	१३६	मुसाफिर	९५

मुहजब	१३०	अ	रख्शाँ	६६
मुहब्बत और नफरत	१५८		रमूज बेखुदी	६५
मुहब्बतका अन्तकाम	१३३, १३८		रम्ज	२२
मुहमाते अजीम	१२३		रवाँ	१३७
मुहम्मद अली	१५३		रबिश	१५५
मुहम्मद अस्माअली	१६१		रशीद अहमद	१३९, १६१
मुहम्मद शाह	२१		रसखान	१२५
मुहसन	६०		रहनुमाअे हिन्द	१४२
मुहसनात	११५		राजदुलारी	१३९
मुदीअुद्दीन जोर	१६२		रानी केतकीकी कहानी	४९
मूनिस	३६, ६०		रामचन्द्र (फ्रोफेसर)	१०७, १२३
मेहदी हसन	१२८		रामायण	१३७
मेन्ह	५७		राशिद अलखैरी	१३६, १५७
मेहर नीम रोज	६५		रासिख	४१
मोमिन	६४, ६८, ६६, ७०		रिन्द	५४, ७३
मोहमेडन आँबर्जवर	१४२		रियाज	७३
मौजे तबस्सुम	१६१		रियासत	१४२
			रीतिबखान	१२५
य			रुसवा	१३० अ
यकरंग	२५		रोबक्र	१०२
यलहरम	१५६		रौनक्र	१३७
यादगारे गालिब	११४			
यादगारे दाग	७६		ल	
यादे बतन	८६		लक्ष्मीदत्त	१३२ अ
यार	२०		लख्ते जिगर	१५२
यास व यगाना	१५५		लल्लू लालजी	१०२, १०६
यूसुफ जुलेखा	१८		लाला खुदरू	१३० अ
			लाला श्रीराम	१२४, १२६
र			लुगन अजिसा	१२५
रंगी	४४, १०७			१७५

लुफ	१०२	शराफत हकीकी	८१
लैलो निहार	१३७	शरीर बीवी	१३९, १६०
व		शाकुन्तल	१०६
वकारञ्जुलमुल्क	११२	शाद	७७
वज्रअे अिस्तिलाहात	१२७	शादौ	७७
वजही	१८	शामे ज़िन्दगी	१५७
वज़ीर	५२	शायरका अंजाम	१५९
वली १४, १६, २०-२३, २८, ५९		शाह अब्दुल कादिर	१०२, १०७
वेहदत	१४१	शाह आलम	२७, ३०, ३९
वहशत	६९	शाह जहाँ	११, २१
वहीद	८९	शाह नसीर	६७, ६८
वहीदुद्दीन सलीम	१२७	शाह नामाअे अिसलाम	१५४
वाक्याते अकबरी	१०७	शाह रफ़ीअुद्दीन	१०७
वारदाते दर्द	३४	शाह वलीअुल्ला	१०७
विक्टोरिया पेपर	१४०	शाह सादुल्ला	१९
विलायती नन्दी	१३९	शाह हातिम	१२, २७, २८
वाल्मीकि	६०	शाहीन व दुराज	१५७
वीर (रणवीरसिंह)	१५९	शिकार नामा	४१
व्याकुल	१३८	शिवली ९१२, ११६-११८, १६२	
श		शिवव्रतलाल बर्मन	१२७
शगूफ़ाअे मुहम्मद	१०८	शुजाअुद्दीन नूरी	१८
शबिस्ताने सुरूर	१०८	शुजाअहौला	२७
शबेक़द	८१	शेक्सपयर	६०, १३७
शबे ज़िन्दगी	१५७	शेख़ अब्दुलकादिर	१२८
शमअे महफ़िल	३४	शेख़ अेनुद्दीन गंजलिस्म	१०१
शमा व परवाना	८६	शेख़सादी	३१, ३५, ४७
शरर ८१, १३०, १२९ अ	१४२	शेफ़ता	६६, ८३
शररे अिशक़	१०८	शेरअुल अज़म	११८

शेर व शायरी	११४	सितारा	१४२
शोलिन्ने अश्रुक	३१	सितारे हिन्द	१०२
शोलिन्ने रूर	१४०	सिपारात्रे दिल	१३१ अ
शोकीन थानवी	१३९, १६१	सिरा अल मुअर्रिफत	१०९
स		सिराजल्लुगान	२४
		सिरातुन्नबी	११८
सआदत अलीखाँ	४०	सिहरुल बयान	३६
सखुनदानाने फारिस	१२०	सुदर्शन	१३२ अ १३३, १३८,
सज्जाद हुसैन	१४१		१३९, १५८
सदल मिश्र	१०२	सुदर्शन सुमन	१३३
सदाबहार फूल	१३३	सुबहे अुम्मीद (मसनवी)	८२, ११८
सनमखानात्रे अश्रुक	७३	सुबहे अुम्मीद (रिसाला)	९१
सफरनानात्रे मिसूरूमवशामें	११७	सुबहे वतन	१५७
सफ़ी	१५२, १५३	पुरूर	८१, ८५-८७, १०७, १०८
सफ़ेदखून	१३८		१३०, १३२
सवरस	१८	सुलतान कुली कुतुबशाह	१४, १००
सद्या	५४, ७३	सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह	१४
सरपंच	१६१	सुलेमान	४५
सरशार ७३, १३०-१३३, १३६, १४१		सुलेमान शिकोह	४०, ४२, ४४
सवानहत्रे मौलाना रूम	११८	सूरदास	१३८
सहर	७३	सैयद अहमद (देहान्वी)	१२५, १२६
सहर (राजकिशोर लाल)	१५३	सैयद अहमदखाँ (सर)	८३, १०५,
साफ़ी	१४२		११०-११४, ११७, १२०,
साधूकी चिता	१५४		१२१, १२७, १४१
सायन्स	१४२	सैयद अबिद हुसैन	१३८
सायध	२३	सैयद दिलावर शाह	१३८
सायल	७७	सैयद सुलेमान नद्वी	११७, १६२
सिंहासन बत्तीसी	१०६, १३०	सैयद हुसैन बिलग्रामी	१२४
सिकन्दर	६३		

आलोचना व निबन्ध

सैरे कोहसार	१२१	हसन निजामी १३० अ, १३१अ, १३९	
सैलाबे तबस्सुब	१३९, १६१	हसरत (जाफर अली)	४२, ४५
सोज	२६, ३१, ३५, ५४	हसरत जोश	१२८
सोजसाज	१५४	हसरत मोहानी	१५०, १५१, १५३
सोलह सिंगार	१३३	हसरते शबाब	८६
सौतिया चाह	१३९	हाँ	१३० अ
सौदा	१२, २३, २४, २६-३३, ३७, ४०, ४४, ४६ ४७, ४९, ५४, ५९, ६५, ६७, १०१	हातिम	२०-२३
स्काँट	१०५	हाफिज	६७
स्पेन्सर	२६	हानराअिड	८१
स्मर्नाका चाँद	१५७	हामी	६१, ८०, ८१, ८३-८५, ११२-११५, ११७, १२८
ह		हाशमी (अंधकवि)	१८
हंटर	१०२	हाशमी (मौलाना)	१२८
हजरत अली	१८	हिन्न	१४१
हजरत अिमाम हसन	५८	हिदायत	४५
हजरत अिमाम हुसैन	५८	हिदायत अुस्सुलतान	१२६
हजार दास्तौं	१२८	हिन्द	१४१
हफ़ीज	७३	हिन्दुस्तान	१४२
हफ़ीज जालंधरी	१५४	हिन्दुस्तानी	१४०
हमारी ज़बान	१४२	हिन्दुस्तानी ग्राम	१०५
हयाते जावेद	११४	हिन्दुस्तानी फ़ायलाज़ी	१०५
हयाते शेखचिल्ली	११४	हिमालय	९५
हयाते सादी	११४	हुनर	५५
हरमिज	६५	हुब्बेवतन (आज़ाद)	८१
हरसुखराय	१४०	हुब्बेवतन (हाली)	८३
हरिश्चन्द्र	१३७	हुमायूँ	१४२
हर्फ़े आख़िर	१५२	हुसैनी	१०२
हसन	२७, ३६, ३७, ६०	हुस्नोअिशक़	४३
हसन और अंजलीन	१३०	हैदरी	१०२
		अहैरान	१०५

भूल सुधार

पृष्ठ १३२ के बाद अंक फार्मके पृष्ठोंके नम्बर गलत छप गये हैं लेकिन उससे मजमूनमें कोअरी गड़बड़ी पैदा नहीं होती । १२९, १३०, १३१ और १३२ नम्बर दोबारा छप गये हैं । चुनांचे पृष्ठ १३२ के बाद जो १२६-१३२ नम्बर आये हैं . उनपर अ का निशान लगाया जाय ताकि सूचीका उपयोग करते वक्त कोअरी दिक्कत न हो । यानी आठ पृष्ठोंके नंबर अिस तरह होंगे:—१२९, १३०, १३१, १३२, १२९ अ, १३० अ, १३१ अ, १३२ अ ।

२७०

भूल सुधार

पृष्ठ	लाअिन	गलत	सही
५०	१० (अपरसे)	साक्री	सारी
६३	३ (नीचेरो)	सम्बन्ध	सम्बद्ध
६६	८ (अपरसे)	दिलकश	दिलकश है ।
१०६	३ (अपरसे)	लिखनेमें	पढ़नेमें
१२०	७ (नीचेसे)	तरह भी	तरह नखमें भी
१२२	८ (,,)	अने केसरी	अने कैसरी
१२६	१४ (,,)	‘रशाद	‘अिरशाद
१३९	४ (अपरसे)	जख्खी	जख्मी
१३९	२ (नीचेसे)	राशिक	राशिद
१६१	१२ (,,)	फरहतुल्ला	फरहतुल्ला
१६२	४ (अपरसे)	बरकले	बरकले

१७६

३७०

श्री कन्हैयालाल शाह द्वारा ओरियंट प्रीटिंग हाऊस, बम्बई में मुद्रित
